मृत्यु का रहस्य

कृपाल सिंह

'मृत्यु का रहस्य'

मूल पुस्तक (अंग्रेज़ी):
'The Mystery of Death'

वर्तमान संस्करण: 2021

मुद्रक :

विषय सूची

परम संत कृपाल सिंह जी महाराज

(1894-1974)

विद्यालय की औपचारिक शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद 17 वर्ष की आयु में आपने फ़ैसला किया, "प्रभु पहले और संसार बाद में" और आध्यात्मिक परिपूर्णता के लिए तीव्र खोज शुरू कर दी। आप अनेकों धर्म, मतों और विचार धाराओं के महापुरुषों और योगी जनों से मिले और उनके दावों को बारीक़ी से जाँचा, परखा। आपकी यह सच्ची खोज अंत में, सन् 1924 ई. में आपको ब्यास के महान संत, हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज (1858-1948) के चरणों में ले गई। अगले चौबीस वर्षों तक आपने हुज़ूर के मार्गदर्शन में अपना आध्यात्मिक विकास किया और उनके मिशन में विभिन्न प्रकार के सेवा कार्य किए।

हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी ने आकाशवाणी की थी कि संसार में आध्यात्मिक जागृति होने वाली है और उन्हीं के आदेश पर, सन् 1948 में संत कृपाल सिंह जी ने आध्यात्मिक कार्यभार संभाला और संतों के शाश्वत संदेश को एक संपूर्ण विज्ञान के रूप में पेश किया। आपने तीन विश्व दौरे किए (1955, 1963 एवं 1972), और अंग्रेज़ी तथा अन्य भाषाओं में, अध्यात्म के हरेक मुख्य विषय पर, अनेकों पुस्तकें प्रकाशित कीं। आपने अस्सी हज़ार चार सौ छियालीस जिज्ञासुओं को दीक्षित किया तथा लाखों लोगों ने गवाही दी कि उनका जीवन सुधर गया है।

परम संत कृपाल सिंह जी ने 'वर्ल्ड काऊंसिल ऑफ़ रिलिजन्स' (विश्व धर्म संघ) की स्थापना की और इसके पहले चार सम्मेलनों (1957, 1960, 1965 एवं 1970) की अध्यक्षता भी की। 1970 में आपने देहरादून में 'मानव–केन्द्र' की स्थापना की, जिसके द्वारा आपने संदेश दिया कि हम एक सच्चे इंसान बनें और इंसान, ज़मीन एवं जानवरों की सेवा भी करें।

परम संत कृपाल सिंह जी से पहले, संसार में भौतिकवाद छाया हुआ था, रूहानियत लोप हो चुकी थी और एक धर्म का नेता दूसरे धर्म के लोगों से बात करने को तैयार नहीं था। यह उनकी कोशिशों का फल है कि आज संसार में आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति पहले से बहुत अधिक जागरूकता है और आज विभिन्न धर्मों के अगुआ एक दूसरे से वार्ता करने के लिए तैयार रहते हैं।

परम संत कृपाल सिंह जी का रूहानी मिशन, जो कि छब्बीस वर्ष चला, 21 अगस्त, 1974 को समाप्त हो गया। उनके कार्य को अगामी 15 वर्षों तक (1974 से 1989 तक) दयाल पुरुष संत दर्शन सिंह जी ने आगे बढ़ाया। आज भी उनका मिशन संत राजिन्दर सिंह जी के नेतृत्व में फल–फूल रहा है। m

प्रस्तावना

विश्व धर्म संघ के प्रधान पद पर आरूढ़, संत कृपाल सिंह जी महाराज ने, अनेक वर्षों से आध्यात्मिकता की ज्योति के मार्गदर्शन कार्य को उच्चतम सीमा तक पहुँचाने में अत्याधिक सहयोग प्रदान किया है। जिस विषय ने युगों से परमार्थ के जिज्ञासुओं तथा अनेकों अन्य लोगों को भ्रम के जाल में फँसाकर चकित सा कर रखा है, इस पुस्तक में महाराज जी ने इसी गंभीर विषय पर प्रकाश डालकर मानव जाति का बड़ा हित किया है।

इसका ध्यानपूर्वक अध्ययन, मृत्यु के भय से भयभीत व्यक्तियों को सांत्वना प्रदान करेगा। इसमें विश्व के समस्त धर्मों के अनेकों ऐसे मान्य साधनों का वर्णन है, जो विशेषतया प्रभु के मूल तत्त्व पर केंद्रित है और लोगों की मृत्यु के निरंतर आतंक से मुक्त करवाने में सहायक हैं।

– मलिक राधा कृष्ण
एम.ए. एल.एल.बी.
m

लेखक की प्रस्तावना

'मृत्यु' जीवन की महानतम गुत्थी है। इस समस्या ने चिरकाल से मानव जाति को आश्चर्य चकित कर रखा है। इसके रहस्य को सुलझाने के अनेकों प्रयत्न करने पर भी यह पहले के समान ही रहस्यमयी है।

सर्वोच्च कोटि के संत—सत्गुरु या पूर्ण गुरु मृत्यु के इस रहस्यमयी रूप से परिचित होते हैं क्योंकि सतलोक से मृत्युलोक में आते समय उन्हें उसके समस्त भेदों का ज्ञान हो जाता है। इतना ही नहीं, यहाँ मृत्युलोक में रहते हुए भी उनकी आत्मा सदैव उस अनंत प्रेम में लीन रहती है। ऐसे ही महान पुरुषों के द्वारा हम संसारी जीवों को इस रहस्य का ज्ञान प्राप्त होता है कि मृत्यु के जिस बाह्य रूप का हमें आभास होता है, वह उसका वास्तविक रूप नहीं। यथार्थ में मृत्यु आनंद देने वाला एक जन्म है या ऐसे भी कहा जा सकता है कि यह एक तरह से अत्यंत सुंदर व सरस जीवन में पुनर्जन्म है, जिसकी संभवतः यहाँ कल्पना करना भी कठिन है। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे सूर्य पृथ्वी के एक भाग से अस्त होकर किसी दूसरे भाग में उदय हो जाता है। मृत्यु का बाह्य रूप जो हमें प्रायः अजेय और भयानक प्रतीत होता है, संत—जन उसी रूप का विश्लेषण और स्पष्टिकरण करके हमें अनुभव देते हैं और इस प्रकार उस पर विजय प्राप्त करने में सहायक बनाकर मृत्यु से निर्भीक बनाते हैं। यह महान शिक्षा केवल संतों से ही प्राप्त होती है। इतना ही नहीं, संत—जन हमें यह आश्वासन भी देते हैं कि आत्मा अमर है वह मरती नहीं— वह तो स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों में कार्य करने के लिए स्थूल शरीर के इस आवरण को उतार फेंकती है। स्थूल शरीर से ऊपर उठने पर उसे अपने दिव्य और आलौकिक स्वरूप का अनुभव प्राप्त होता है और इस प्रकार अंत में वह चेतन प्रभु में जहाँ अनंत, आनंद है लीन हो जाती है।

पुस्तक के आगे लिखे पृष्ठों में इस रहस्यमयी समस्या को सुलझाने के उपायों को संक्षिप्त और सरल रूप में वर्णित करने का प्रयास किया गया है, जिससे सत्य के जिज्ञासुओं को भली प्रकार समझ में आ जाए। शरीर, आत्मा और इन दोनों से संबंधित अनेकों गूढ़ तथा गुप्त रहस्यों को सरल रूप से समझाने का भरसक प्रयत्न किया गया है। मन को नियमित करने के उपायों का भी इस पुस्तक में वर्णन है, जिससे आत्मा को शरीर से ऊपर चेतन जगत में ले जाने में

यह मन एक नियमित यंत्र के समान कार्य कर सके। यह अवस्था जीवित काल में मृत्यु के समान है, जिसका अंत समय, सभी को अनुभव मिलता है।

किसी पूर्ण संत की महानता व गौरव इन तथ्यों को बुद्धि के स्तर पर समझाने मात्र में नहीं है, बल्कि इस बात में है कि जिस तथ्य का वह वर्णन करता है, उसका साथ ही उसी समय अनुभव प्रदान करे। संतों की शिक्षा एकमात्र आत्मिक शिक्षा है, जिसका मन रूपी प्रयोगशाला में अनुभव दिया जा सकता है। यहीं पर स्थूल शरीर से परे के सूक्ष्म संसारों का अनुभव प्राप्त होता है। आत्मा के पुनरुत्थान के अनंत दृश्यों के भंडार तथा अनेकों अवर्णनीय सौंदर्यों के मंडलों का यहाँ ज्ञान और अनुभव मिलता है। यह सब ज्ञान इस स्थूल शरीर में रहते हुए संभव है। वास्तव में मोक्ष इसी शरीर में है, और इस शरीर में रहते हुए ही प्राप्त होना चाहिए।

आत्मा तथा परमात्मा की प्रभुता के प्रति खोज का मार्ग सभी सत्य के जिज्ञासुओं के लिए सदैव खुला रहता है, परंतु इस मार्ग पर सफलता उस व्यक्ति को प्राप्त होती है, जिस पर किसी पूर्ण पुरुष (सत्पुरुष) की अपार दैवी कृपा हो। प्रभु–प्रेम से जागृत व्यक्ति को प्रभु प्राप्ति के साधन अवश्य प्राप्त होंगे। यह तो केवल अभिलाषा की तीव्रता का प्रश्न है। वास्तव में जिसके हृदय में प्रभु प्राप्ति की सच्ची तड़प होती है, ऐसे जिज्ञासु को अपनी राह पर लाने के लिए परमात्मा स्वयं मनुष्य के चोले में आ जाता है। मेरी यही सद्भावना है कि जिन लोगों के अंदर प्रभु प्राप्ति की तीव्र इच्छा है, उनको परमात्मा अपनी दिव्य और आलौकिक ज्योति से प्रकाशित करके किसी ऐसे महान पुरुष के चरणों में पहुँचाए, जहाँ उसके अंदर भी यह दैवी ज्योति प्रकाशित हो।

मैं विशेषतया श्री भद्रसेन और अनेकों उन अन्य व्यक्तियों का हृदय से आभारी हूँ, जो इस पुस्तक को संपूर्ण करवाने में सहायक बने और इसके कार्य को सम्पन्न करवाने में प्रेमपूर्वक समय देते रहे।

– कृपाल सिंह

अगस्त 25, 1968

m

भूमिका

'जीवन' और **'मृत्यु'** परस्पर संबंधी शब्द है। इन दोनों के संबंध को हम विचार द्वारा, वर्णन द्वारा और क्रिया द्वारा भली प्रकार नहीं जान सकते। इसका सही ज्ञान जानने के लिए एक को दूसरे के बिल्कुल निकट लाना होगा। इसी प्रकार इनमें से एक अद्‌भुत तथ्य को प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए अनेकों अन्य बाधाओं के अतिरिक्त हमें प्रत्येक पग पर जटिल और सजीव समस्याओं का सामना करना पड़ता है। हम हर स्थिति के आंशिक भागों को छाँटने में विश्लेषण क्रिया का प्रयोग करते हैं, उन्हें अलग–अलग नाम देते हैं, एक का दूसरे से संबंध स्थापित करते हैं, ताकि इंद्रियों और बुद्धि के स्तर पर उनका कुछ ज्ञान प्राप्त हो सके। इस प्रकार वस्तुओं के स्वभाव से, प्रकृति की ज्ञान देने वाली क्षमता के स्वभाव से, हम जीवन काल में केवल आंशिक ज्ञान से ही परिचित रह पाते हैं और यथार्थ ज्ञान से अनभिज्ञ रहते हैं।

अपरिचित तथ्यों का कुछ भी ज्ञान व अनुभव न होने के कारण हम सही ज्ञान में न जाकर इन विषयों के केवल रंग, रूप, स्वभाव और विशेषताओं आदि के ऊपरी व बाह्य ज्ञान से ही संतुष्ट हो जाते हैं। यद्यपि बाहर रंग–रूप, आकार आदि में विभिन्नता मालूम होती है, पर आत्मा का जीवन सिद्धांत अर्थात मूल तथ्य सभी में एक समान है।

लेडी शैलट के समान हम भी सारा समय एक छायालोक में रहते हैं। शीशे में प्रतिबिंब के समान हमारे मन में बुद्धि द्वारा उत्पन्न विचारों का निरंतर प्रतिबिंब पड़ता रहता है। हमको अपने चारों ओर के घिरे भौतिक जगत का भी सही ज्ञान नहीं होता। चेतन जगत का तो कहना ही क्या! यह चेतन संसार हर एक के अंतर विद्यमान है और इस भौतिक तथा स्थूल जगत से कहीं ज़्यादा आश्चर्यपूर्ण, यथार्थ, सुंदर तथा श्रेष्ठ है।

आत्मा देहधारी मानव का जन्म होने के बाद, समस्त भौतिक और अभौतिक जगत को संचालित करने वाली और आश्रय देने वाली सत्ता के पीछे चेतनता युक्त एक सिद्धांत का विकास हुआ, जो सारी सृष्टि का जीवन आधार है। धीरे–धीरे समय बीतने पर इसी सिद्धांत के अनेकों

धर्मों का उदय हुआ। हर एक धर्म का विकास करते समय उसके प्रर्वत्तक ने उस समय के लोगों की अनिवार्यताओं तथा उनकी धर्म को ग्रहण करने की क्षमता आदि को ध्यान में रखा। भौतिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक या आर्थिक सुधार करने के लिए संसार में समय–समय पर अनेकों संत, अवतार, पीरे–पैग़ंबर, मसीहा आदि आए। प्रत्येक धर्म के प्रवर्त्तक ने अपने से पहले आए सभी महान पुरुषों की शिक्षाओं का समन्वय किया और अपने धर्म को एक नवीन रूप देकर उस समय के लोगों के सामने पेश किया, जो उस समय के व्यक्तियों को ग्रहण–शक्ति को देखते हुए, वह धर्म सरलता से समझ आ जाए और लोग उसे बिना किसी शंका के स्वीकार कर लें।

सभी धर्मों का जन्म उत्तम प्रवृत्तियों से होता है। प्रत्येक धर्म के चलाने वाले उस समय की परिस्थितियों को देखते हुए पहले स्वयं बने और फिर समय की आवश्यकतानुसार सुधार करने का प्रयास किया। इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि जागृत पुरुषों के द्वारा धर्म की जो महान शिक्षा अनेकों लोगों को समय–समय पर दी गई थी, वह उस समय की परिस्थितियों के अनुसार थी और उस काल के सामाजिक तथा नैतिक नियमों पर आधारित थी, जिससे निरंतर अशांति और भय से पीड़ित लोग उसको त्यागकर आपस में स्नेहपूर्वक व्यवहार करें और शांति का जीवन व्यतीत कर सकें।

अन्य विचारों के समान सभी उत्तम और धार्मिक विचारधाराएँ भी मन से ही उत्पन्न होती हैं। संसार के सभी महान पुरुषों के विचारों का उदय उनके शरीर में स्थित अंर्तात्मा से हुआ। यद्यपि बहुत कम व्यक्ति उनके स्तर तक पहुँचकर, रहस्यवाद की उस वास्तविक शिक्षा का लाभ उठा पाते हैं, जो हर धर्म का वैज्ञानिक और यथार्थ पहलू है और उसकी शिक्षा का मूल केंद्र है। इसलिए मूल तथ्य का अनुभव तो कुछ चुने हुए व्यक्तियों को ही दिया गया था और अन्य अनगिनत लोगों को शिक्षा का केवल सैद्धांतिक मार्ग विभिन्न दृष्टांतों की सहायता से यह सोचकर समझाया गया कि संभवतः कुछ समय के पश्चात् वह उनकी शिक्षा की यर्थाथता को समझकर ग्रहण करने योग्य हो जाए। इस प्रकार जैसे–जैसे व्यक्ति धर्म की गहराई में पहुँचता है, उसे वास्तविकता की झलक अवश्य मिलती है– चाहे किसी समय वह झलक धीमी व अस्थिर मालूम होती है। इसका कारण है कि अभी हमारी सही ज्ञान को देखने वाली वह आँख नहीं बनी, जो सब धर्मों को चलाने वालों की थी। एक साधारण व्यक्ति के लिए धर्म एक सिद्धांत–मात्र है,

एक विवेकशील के लिए सिद्धांत के अतिरिक्त कुछ और नहीं जिसका एकमात्र उद्देश्य जीवन को सुधारकर व्यक्ति को उत्तम पुरुष और समाज का अच्छा सदस्य व यर्थाथ नागरिक बनाना है, ताकि वह परिवार, समाज और सरकार के प्रति सभी उत्तरदायित्वों का भली प्रकार पालन कर सके।

समस्त विचार, कर्म, कला, विज्ञान, व्यवसाय, शासन–कला, पुरोहित–कला, शिष्ट–कला आदि का आधार संसार व्यापी सत्य का वह तथ्य है जिसके अंदर विभिन्न प्रकार के अनेकों विचार उस समय के प्रवर्त्तकों को अपनी समझानुसार आए। इस प्रकार धर्म में सामाजिक और नैतिक तथ्यों का सम्मिश्रण करके लोगों के सम्मुख उस रूप में रखा जाता है, जो साधारण जनता को सहज स्वीकार हो जाए। धर्म का यही पहलू मानव जाति के सामाजिक स्तर को दृढ आश्रय प्रदान करता है।

यदि हम एक पग और आगे चलें तो हमें धर्म का एक दूसरा रूप प्रकट होता है। यह नैतिक गुणों का पहलू है, जो विभिन्न स्तरों पर रीति–रिवाज़, नियम–आकार, तपस्या–प्रायश्चित, सदाचार–दान और दुराराध्य (बेमेल) शक्तियों से मित्रता करने व उनका पालन करने में तथा मित्रता वाली शक्तियों से समयानुसार सहायता प्राप्त करने तथा प्रार्थना आदि करने के लिए जादू आदि करना है।

अंत की श्रेणी में योगी और योगीश्वर आते हैं, जो औरों के समान अपनी यौगिक क्रिया व अनुशासन में किसी से किसी प्रकार कम नहीं। इन पर हम अभी विचार करेंगे।

महापुरुषों के इस क्रम में सबसे ऊपर की श्रेणी में संत आते हैं, जो पूर्ण पुरुष होते हैं या यह कहें कि वह मानव के चोले में स्वयं परमात्मा होते हैं, जो आत्मा और परमात्मा के विषय में केवल बतलाते ही नहीं वरन् जिसको दीक्षा देते हैं, उसे उसका अनुभव प्रदान करके उसकी आत्मा का प्रभु से चेतन संबंध स्थापित करते हैं। उनके विश्वास पर यह कहा जा सकता है कि उन्हीं का धर्म वास्तविक धर्म है जो यथार्थ में धार्मिक है और जो 'शब्द–विद्या' द्वारा अनुभव देकर मनुष्यों को पुनः परमात्मा से मिलाते हैं।

जैसे साधारणतया समझा जाता है कि संतों की शिक्षा धर्म किसी संस्थागत रूप में प्रकट नहीं करती। एक प्रकार से यह भी विज्ञान की क्रमबद्ध जाति है। इसे आत्मा का विज्ञान कहते हैं, जो कोई संतों के बतलाए मार्ग पर चलकर इस विज्ञान का भली प्रकार लगन से अभ्यास करता है, उसे वही अनुभव प्राप्त होता

है और वह उसी निष्कर्ष पर पहुँचता है– चाहे वह समाज के किसी धर्म को मानने वाला हो या किसी ऊँचे व नीचे, पोप संबंधी व दूसरे गिरजे से धर्माध्यक्ष हो या इसाइयों के एक विशेष पंथ का मानने वाला मनुष्य हो।

आत्मा का विज्ञान सभी धर्मों का निचोड़ और मूल तत्त्व है। यह वह आधारशिला है जिस पर सभी धर्म आधारित है। पूर्ण पुरुषों का कहना है कि अध्यात्म विद्या में पिंड, अंड, ब्रह्मंड, पारब्रह्मंड, सचखंड, अलख और अगम नामक सात लोक हैं। और इन सब मंडलों से ऊपर एक आठवाँ लोक है, जिसको संतों ने विभिन्न नाम दिए हैं जैसे– 'अनामी' (नाम रहित) 'महादयाल' (दयाल) 'निराला,' या 'स्वामी' (सबका पालक) आदि। संतों से दीक्षित शिष्यों को इनमें पहले पाँचों लोकों का विवरण प्रत्येक मंडल को पृथक्–पृथक् ज्योति और नाद की विशेषताओं सहित दिया जाता है। साथ ही यह भी बतलाया जाता है कि पाँच क्षेत्रों में अलग–अलग कौन सी शक्ति (सत्ता) काम करती है।

जो शिष्य पहले लोक को पार करके जाता है, उसे 'साधक' कहते हैं। जो दूसरे लोक को तय करता है, उसे 'साध' (अनुशासित आत्मा) कहते हैं। जो पारब्रह्मंड में पूर्ण रूप से पवित्र होकर अपनी सभी इच्छाओं तथा अभिलाषाओं से मुक्त होता है, उसे 'हंस' कहते हैं, और जो इससे भी ऊपर जाता है उसे 'परम हंस' (मुक्त आत्मा) कहते हैं। जो पाँचवे लोक सचखंड में पहुँचता है, उसे 'संत' कहते हैं, और जिस संत को परमात्मा की ओर से सत्य की शिक्षा देने और उस सत्य का अनुभव देकर दीक्षा देने का कार्यभार सौंपा जाता है, उसे 'संत–सत्गुरु' या 'पूर्ण गुरु' कहते हैं क्योंकि उनमें जीवों को दीक्षा देकर परे का अनुभव देने तथा प्रभु की गोद में पुनः ले जाने की क्षमता है।

योग का अर्थ है– आत्मा का महाआत्मा या परमात्मा से मिलन। योग के कई प्रकार हैं– जैसे मंत्र–योग, हठ–योग, अष्टांग–योग, कर्म–योग, भक्ति–योग, ज्ञान–योग, राज–योग, लय–योग आदि। योग की इन सभी क्रियाओं का संबंध स्थूल शरीर तथा मन को अनुशासित करने से है। उनका उद्देश्य स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन को प्राप्त करना है, जिससे वह अच्छा स्वास्थ्य, शारीरिक सौंदर्य तथा दीर्घ आयु को प्राप्त कर सके। इनसे प्रत्येक का अपना क्षेत्र और उद्देश्य है। यह सब विभिन्न यौगिक क्रियाएँ संकीर्ण दृष्टिकोण से नहीं चलतीं, बल्कि यह सभी मिलकर व्यक्ति का पूर्ण रूप से निर्माण करने का प्रयास करती हैं (इस विषय पर पूर्ण विवरण प्राप्त करने के लिए 'सृष्टि का

सिरमौर' नामक पुस्तक को पढ़ें, जहाँ इसकी अधिक विस्तार से व्याख्या की गई है)।

योग का एक और प्रकार भी है, जिसे 'सुरत–शब्द योग' या 'शब्द–धारा से मिलन' भी कहते हैं। यह सब धर्मों का मूल है। फिर भी यह अभी तक ब्रह्मज्ञानियों तक को भली प्रकार समझ नहीं आ सका। यह व्यक्ति को अंतिम लक्ष्य अनामी या निराकार तक पहुँचाता है, जो सारी भौतिक तथा अभौतिक सृष्टि को पीछे से अदृश्य रूप में सत्ता पहुँचाता है। निरोल चेतनता से भरे समुद्र के समान, आकार रहित और नाम रहित निराकार परमात्मा का स्पष्टिकरण अनेकों विभिन्न आकारों में अनेकों विभिन्न नामों के साथ उसकी अपनी ही सत्ता की हिलोरों से हुआ, जिस धुनि (आवाज़) को 'दैवी–शब्द' कहा जाता है। आत्मा का किस प्रकार परमात्मा की सत्ता से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित किया जाए, यही सृष्टि की रचना का मौलिक सिद्धांत और जीवन की ज्योति है। रहस्यवाद का भी यही विषय है। जबकि सभी दर्शनशास्त्र निराकार परमात्मा के उस पहलू से संबंधित हैं, जिसका साक्षात्कार हो चुका है और गुप्त सृष्टि के उस भाग से जिसकी रचना हो चुकी है। परंतु रहस्यवाद सृष्टि की रचना के उस सर्वप्रथम सिद्धांत से ही प्रारंभ करता है, जिसकी हिलोर से 'ज्योति', और 'नाद' अर्थात् 'श्रुति' का उदय हुआ।

परमात्मा के 'नाम' अर्थात् जिस स्वरूप का साक्षात्कार हो चुका है, उसके साथ चेतन संबंध स्थापित करने से 'शब्द' के साथ संपर्क प्राप्त होता है, और इसी 'शब्द–धारा' के द्वारा व्यक्ति को ऊपरी मंडलों के अवर्णनीय आनंद का वास्तविक अनुभव, मृत्यु से पहले भौतिक जगत के इस स्थूल शरीर में इसी समय मिलता है। इसी हिलोर से उत्पन्न अनेकों प्रकार की विभिन्न आवाज़ें, शिष्य को भौतिक और आत्मिक मंडलों के क्षेत्रों में पथ–प्रदर्शन करती हुई आत्मा को सत्तनाम के उस निरोल चेतन तथा आत्मिक जगत में पहुँचाती हैं, जहाँ से इस दैवी और आलौकिक शब्द–धारा का उदय होना है। और इस प्रकार यह शब्द–धारा संसार रूपी भवसागर की थपेड़ों से थके जीवों को परमपिता परमात्मा के असली घर तक पहुँचने में सहायक होती है, जहाँ अनंत आनंद है।

तुलसी साहब कहते हैं :

आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिये ।।

इसी तथ्य की पुष्टि शम्स तबरेज़ नामक मुसलमान फ़क़ीर के द्वारा की गई, जब वह अपने को स्वयं संबोधित करते हुए कहते हैं कि,

चर्ख़ रा दर ज़ेरे पा आर ऐ शुजाअ ।
बिशनो अज़ फ़ौके फ़लक बांगे समाअ ।

अर्थात, ऐ शम्स! ख़ुदा की आवाज़ को तू सुन वह तुम्हें उसके साथ मिला देगी।

इसी बात को गुरु अर्जन साहिब ने कहा है कि,

जिनि तुम भेजे तिन्ही बुलाए
सुख सहज सेजी घरि आउ ।।

– आदि ग्रंथ (धनासरी म.5, पृ.678)

क़ुरान शरीफ़ में आता है कि,

ऐ सन्तुष्ट आत्मा! अपने ख़ुदा की ओर लौट, इस तरह कि तू उससे राज़ी रहे और वह तुझसे।

– पवित्र कुरान (89:28-29)

परमात्मा को प्राप्त करने के लिए एक जीवित सत्पुरुष का होना अनिवार्य है। सेंट जान में दिया है कि,

किसी भी व्यक्ति का परम पिता के साथ मेल मेरे द्वारा ही संभव है।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 14:6)

सभी संतों का यही कहना है कि संसार में सदैव कोई न कोई संत या मुर्शिद अवश्य हुआ है, जो 'क़िबलानुमा' बनकर क़िबला का, मार्गदर्शन का कार्य करता है। उसकी आत्मा सबसे पवित्र आत्मा होती है। सभी तीर्थस्थानों में भक्ति और श्रद्धा के लिए वह सबसे बड़ा तीर्थ होता है। सिक्ख धर्म में आता है कि आध्यात्मिक गुरु समय–समय पर एक के बाद दूसरा आता रहता है :

हरि जुगह जुगो जुग जुगो सद पीढ़ी गुरु चलन्दी ।।

– आदि ग्रंथ (सिरीराग म.4, पृ.79)

सेंट ल्यूक ने भी इसी प्रकार लिखा है :

जब से संसार की रचना हुई है परमात्मा हमेशा पवित्र आत्माओं के मुख से बोलता रहा है।

– पवित्र बाइबिल (लूका 1:70)

प्रकृति में माँग और पूर्ति का नियम सदा से कार्य करता आया है। भूखे को रोटी और प्यासे को पानी हमेशा मिलता है। जहाँ आग है वहाँ ऑक्सिजन खुद मदद के लिए आ जाती है। हर पीर और अवतार परमात्मा की ओर से एक निश्चित समय के लिए संसार में कार्य करने के लिए भेजा जाता है। ईसा ने कहा है :

> *जब तक मैं इस संसार में जीवित हूँ, उतने समय तक मैं संसार की ज्योति हूँ।*
>
> – पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 9:5)

लेकिन निश्चित कार्य पूरा हो जाने के पश्चात् उसे प्रभु द्वारा वापिस बुला लिया जाता है, और इस प्रकार वह इस भौतिक जगत के कार्यक्षेत्र से अलग हो जाता है। प्रकृति में कुछ भी बेकार नहीं जाता। परमात्मा की शक्ति वहीं समाप्त नहीं हो जाती, बल्कि वह पुनर्उत्थान के उस कार्य को चलाए रहती है, जो सदैव जीवित रहता है। संसार में जब एक मनुष्य का स्थूल शरीर का आवरण मृत्यु से उतरता है, तो इसी दैवी शक्ति का संसार में साक्षात्कार करने के लिए किसी दूसरे मनुष्य को चुना जाता है। ऐसे मानवी शरीर को 'परमात्मा का दूत' कहते हैं। इस बीच के समय में आई सांसारिक मलीनताओं के युग में प्रवेश करके वह महापुरुष उसके कार्यभार को संभालकर उसकी कमी की पूर्ति करते हैं– ठीक उसी प्रकार जैसे एक बल्ब के खराब हो जाने पर दूसरा नया बल्ब लगा लिया जाता है, ताकि सांसारिक ज्योति पहले के समान आती रहे। क्राइस्ट–सत्ता या प्रभु–सत्ता का कभी अंत नहीं होता। वह अविनाशी है और इसका साक्षात्कार संसार में किसी ने किसी मनुष्य में होता रहता है। चाहे वह ज़ोरोस्टर, कन्फ़्यूशियस, ईसा, मुहम्मद, कबीर, नानक, तुलसी या स्वामी जी आदि किसी में प्रकट हो जाए।

जैसा कि पहले कहा गया है कि संसार कभी भी संतों से ख़ाली नहीं रहा। स्वामी जी महाराज के बाद बाबा जैमलसिंह जी ने अपने गुरु का संदेश पंजाब में फैलाया। उसके पश्चात् उनके विख्यात आध्यात्मिक पुत्र और वारिस, हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी ने कार्यभार संभला। दिल्ली में स्थापित 'रूहानी–सत्संग' के प्रमुख केंद्र में संसार के सभी धर्मों के महापुरुष अब भी समय–समय पर आकर एक साथ एक मंच पर बैठते हैं। यहाँ सामाजिक, नैतिक और राष्ट्रीय विभिन्नता के रहते हुए सारी मानव जाति को एक साथ मिलाने का प्रयास किया जा रहा है। इसी रूहानी–सत्संग के द्वारा हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज की आध्यात्मिक

महिमा तथा गौरव का साक्षात्कार पहले से भी ज़्यादा सारे संसार को मिल रहा है।

जब सब संसार को छोड़कर चले जाते हैं, तो उनके सत्य की खोज के प्रति किए हुए अमूल्य अनुभवों को एकत्रित करके संसार के धर्मग्रंथों में संग्रह कर दिया जाता है, जैसा कि अब विद्यमान है। हम बड़े भाग्यशाली हैं कि इस बीसवीं सदी में हमारे पास कितने ही प्राचीन धर्मों का संग्रह है। हमारे पास एवैस्टा, वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, श्रीभगवद्गीता, नई तथा पुरानी बाइबिल, अल–कुरान, आदि ग्रंथ, सार–बचन और गुरुमत सिद्धांत जैसे अनेकों धर्मग्रंथ हैं। यह सब आत्मा के उसी एक सत्य को लेकर चलते हैं, जो सबमें एक समान है। उसमें केवल सत्य की खोज और प्राप्ति का मार्ग भिन्न प्रकार का है। सभी के अपने–अपने विशेष नाम हैं और उनको प्रकट करने का विशेष ही ढंग है, लेकिन क्योंकि हमसे अधिकांश व्यक्ति किसी एक या दूसरे महात्मा की शिक्षा के अनुयायी हैं। भाषा और उसमें प्रयोग हुए शब्दों से अपरिचित होने के कारण हम दूसरे धर्मग्रंथों की शिक्षा का सही ज्ञान पाने में असमर्थ हैं। जब तक उन दी हुई सत्य की व्याख्या से कोई परिचित और अनुभवी महान पुरुष उसे भली प्रकार समझाकर हमारा मार्गदर्शन नहीं करता, हमें उस वास्तविक और यर्थाथ अर्थ की समझ नहीं आती। ऐसे ही योग्य महापुरुषों के द्वारा प्राचीन धर्म शिक्षा पुनः जीवित हो जाती है और सत्य के जिज्ञासुओं के लिए एक नया जीवन और उत्साह प्रदान करने का साधन बनाती है। इसीलिए कहा गया है कि धर्मग्रंथ संतों के हाथों में यंत्रों के समान है और जीवन रूपी भवसागर से पार कराने में सहायक हैं :

> बेद गिरंथ गुर हट है, जिसु लगि भवजल पारि उतारा ।।
> सतिगुर बाझु न बुझिऐ, जिचरु धरे न प्रभु अवतारा ।।
>
> – भाई गुरदास, वारां गिआन रतनावली (वार–1, पौड़ी–17)

लेकिन धर्मग्रंथों का सही ज्ञान किसी सत्पुरुष के द्वारा ही संभव है। दीक्षा के समय सत्य के जिज्ञासुओं को शब्दधारा के साथ चेतन संपर्क प्राप्त होता है। परमात्मा प्रेम का गहरा समुद्र है; उसकी हिलोर से परमात्मा की शक्ति का साक्षात्कार ज्योति और नाद के द्वारा हुआ। इसी को 'शब्द' कहा जाता है। दीक्षा के समय शिष्य को परमात्मा की सत्ता और आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव दिया जाता है। तभी से वह ईश्वर की उस ज्योति को देखने वाला और उसकी उस आवाज़ को सुनने योग्य बन जाता है, जो समस्त स्थूल और सूक्ष्म सृष्टि में सदा सर्वव्यापक

है। कोई भी स्थान उनसे वंचित नहीं। गुरु नानक इसी सर्वव्यापी प्रभु नाम के रंग में हर समय लीन और मस्त रहते थे। कहा जाता है कि अपनी यात्रा के दौरान में एक दिन वह मक्का में मुसलमानों के पवित्र धर्मस्थान क़ाबा की ओर पाँव करके लेट गए। मस्जिद के सेवादार अपने धर्मस्थान के निरादर को सहन न कर सके। उन्होंने गुरु नानक का अपमान करते हुए कहा कि तुम परमात्मा के घर की ओर पाँव करके कैसे लेटे हो? गुरु नानक, जिनको परमात्मा की वास्तविक और सर्वव्यापी सत्ता का ज्ञान था, हँसकर पूछने लगे, " कृपया मुझे बतला दो परमात्मा किस तरफ़ नहीं है, ताकि मैं अपने पाँव उस ओर कर लूँ।" यह परमात्मा में लीन संतों के देखने का पहलू है। वह प्रभु की एक सर्वव्यापी जीवन–सिद्धांत के रूप में देखते हैं, जो सबका जीवन आधार है और हर जगह विद्यमान है।

अल–कुरान में भी पैग़ंबर साहिब ने सही कहा है कि परमात्मा का राज्य पूर्व से पश्चिम तक प्रत्येक स्थान व दिशा में फैला हुआ है। ईश्वर के सच्चे भक्त जहाँ कहीं अपना ध्यान उसकी ओर करेंगे, उन्हें वहीं परमात्मा मिलेगा क्योंकि वह किसी स्थान विशेष से सीमित नहीं। वह सबके हृदय में बैठा सभी की तड़प और पुकार भली प्रकार जानता है।

मुसलमानों के एक पीर अल–निसाई इसी बात की ओर विस्तार में पैग़म्बर साहिब का उद्धरण पेश करते हैं कि,

मेरे लिए सारी धरती ही परमात्मा का पवित्र मंदिर है, जहाँ हमें ख़ुदा की भक्ति करने के लिए थोड़े दिन ठहरना है। मेरे अनुयायी जहाँ कहीं भी हों नमाज़ का समय आने पर वहीं बैठकर नमाज़ पढ़ सकते हैं।

बाइबिल में आता है कि,

परमात्मा ने यह सारी धरती और आकाश बनाया है और वह मनुष्यों द्वारा बनाए मंदिरों में निवास नहीं करता।

– पवित्र बाइबिल (कार्य 17:24)

ऑलिवर वैंडल होम्स ने इसीलिए भक्ति भाव पर अधिक महत्त्व दिया क्योंकि प्रेम–भाव से युक्त भक्ति ही स्थान, समय और पूजा को पवित्र और पूर्ण बनाती है। उसका कहना है कि "वह सब कुछ पवित्र है जहाँ कोई भक्ति भावना से झुक जाता है।"

परमात्मा की सत्ता और आत्मा सर्वव्यापी है। यह सदा विद्यमान रहती है और इसकी धारा हमेशा सबमें बहती है। बिजली की लिफ़्ट के समान आत्मा 'शब्द' के मधुर और आलौकिक संगीत के द्वारा ऊपरी दिव्य–मंडलों में उठती चली जाती है, जब तक कि वह निराकार अनामी, नाम और शब्द रहित सत्ता के उस स्त्रोत में नहीं पहुँच जाती, जहाँ से उसका उदय हुआ है।

हम सब अपनी–अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार परमात्मा की खोज में हैं। आत्म–अनुशासन और आत्म–पवित्रता का विकास करने वाली क्रिया लंबे अरसे तक चलती है और जीव थक जाता है। इस क्रिया के समाप्त होने पर अंत में जीव परमात्मा की शक्ति के द्वारा किसी संत–सत्पुरुष के चरणों में प्रभु प्राप्ति के लिए आश्रय प्राप्त करता है। बाइबिल में आता है कि

मेरे पिता की आज्ञा के बिना कोई भी मेरे पास ऊपर नहीं आ सकता। मैं उसी की आज्ञानुसार अंतिम दिन जीव को ऊपर उठा दूँगा।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 6:44)

यहाँ अंतिम दिन से अभिप्राय उस दिन से है, जब कोई शरीर के आवरण को छोड़ता है। चाहे वह अपने जीवनकाल में स्वेच्छा से आत्म–विश्लेषण के प्रत्यक्ष अनुभव को प्राप्त करने के लिए स्थूल शरीर से ऊपर उठे या मृत्यु के दिन जब मौत के दूत हमारे न चाहने पर भी आत्मा को इस स्थूल शरीर से बाहर धकेल दें। गुरु अर्जन साहिब ने कहा है :

जिनि तुम भेजे तिनहि बुलाए, सुख सहज सेंति घरि आउ ।।

– आदि ग्रंथ (धनासरी म.5, पृ.678)

रेडियो और टेलीफ़ोन के आविष्कारों से बिना किसी शंका के यह साबित हो गया है कि हमारे चारों ओर वातावरण हिलोर के समान आवाज़ों से भरा पड़ा है। जो किसी भी स्थान से पकड़कर सुनी जा सकती है, यदि उसका सुनने वाला यंत्र ठीक हो और सही प्रकार से साधकर सुनने की अवस्था में रखा हो। एक समर्थ गुरु दीक्षा के समय यही करता है। वह जीव को श्रवण करने योग्य बनाकर उस 'शब्द–धारा' को उसे सुनवाता है।

भौतिक जगत के बाहरी संगीत का भी मनुष्य के ऊपर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। युद्ध के मैदान में आगे बढ़ते हुए जवानों में बिगुल और नगाड़ों की आवाज़ें

उनमें जीवन और उत्साह प्रदान करती हैं। स्कॉटलॅन्ड के पहाड़ों पर रहने वाले निवासी लहंगों की तरह की पोशाक़ पहनकर शहनाई की आवाज़ पर वीरता के साथ चलते हुए आगे बढ़ते हैं। नाविक और मल्लाह लहरों के थपेड़ों की नियमित धुनि पर पतवार और चप्पू को अपनी ओर खींचते और घसीटते हैं। अर्थी के साथ जाने वाले लोग ढ़ोल की दर्दनाक आवाज़ के साथ क़दम के साथ क़दम मिलाकर चलते हैं। नृत्य करने वाले संगीत की ताल पर घुंघरू और चूड़ियों को छनछनाते हुए नाचते हैं। पशु भी अपने सींगों से बंधे घुंघरुओं की आवाज़ पर मस्त चलते हैं। तेज़ भागने वाला हिरण जैसा जानवर घने जंगलों में ढ़ोल की आवाज़ से पकड़ा जाता है। बड़े से बड़ा जहरीला साँप वीणा की आवाज़ की मस्ती में सपेरों के द्वारा पकड़ा जाता है। बाहर का संगीत जीव को भौतिक जगत से कितनी दूर ले जाता है और भावनाओं को उत्तेजित करके मनुष्य में आँसू तक उत्पन्न कर देता है। यह सचमुच संगीत की प्रभावशाली शक्ति के कारण है। 17वीं सदी के एक प्रसिद्ध अंग्रेज़ कवि, यूहन्ना ड्राइडॅन नामक ने बड़े ज़ोरदार तरीक़े से कहा,

संगीत किस मानवीय प्रकृति को उत्तेजित और दबा नहीं
सकता ?
जब युवल ने संगीतमय शंख बजाया
उसके सुननेवाले भ्राता, जो वहाँ खड़े थे
और अचंभित हो उस दिव्य-ध्वनि को सजदा करने
अपने मुख के बल गिर पड़े।
उन्होंने यह मान लिया कि उस शंख के खोल में
प्रभु से अन्य कोई बस नहीं सकता था,
जोकि इतनी मीठी वाणी में और इतनी भली प्रकार
बोल सकता था।
संगीत किस मानवीय प्रकृति को उत्तेजित और दबा नहीं
सकता ?

जब भौतिक जगत के संगीत की ऐसी शक्ति है, तो कोई सोच सकता है कि उस अलौकिक संगीत की क्या सत्ता होगी! यदि कोई स्थूल शरीर से ऊपर उठकर ऊपरी मंडलों की उस आलौकिक आवाज़ के साथ जुड़े, तो उसे मालूम पड़ेगा कि कितनी मस्ती और आनंद देने वाली वह आवाज़ है। परमात्मा के इज़हार में आई हुई शक्ति को ही 'शब्द' कहते हैं। परमात्मा प्रेम का भरा सरोवर है, जो

प्रेम से लबालब भरे होने के कारण निकल–निकलकर बाहर बहता है। परमात्मा प्रेम, प्रकाश और जीवन तीनों प्रदान करने वाला स्त्रोत है।

स्थूल और भौतिक जगत से परम पिता निराकार प्रभु की ओर जाने वाले मार्ग में अनेकों मंडल तथा उपमंडल आते हैं। यात्रा में कई ख़तरे भी हैं। गुरु उस मार्ग की सब बाधाओं और कठिनाइयों से परिचित होता है। इसलिए बिना किसी गुरु के सूक्ष्म मंडलों को पार करना अत्यंत कठिन है। इसलिए एक ऐसे समर्थ गुरु का होना अत्यंत आवश्यक है, जो उन मार्गों की कठिनाओं और बाधाओं से भली प्रकार परिचित हो। सत्गुरु इस मार्ग को भली प्रकार जानता है। उसे मालूम है कि वहाँ के मंडलों का प्रकाश जीवात्मा को चकाचौंध कर देता है, राह में काल माया के अनेकों प्रकार के धोखे हैं, जीव की गिरावट के लिए अनेकों मधुर आवाज़ें तथा भयानक दृश्य आदि हैं। इन सभी बाधाओं से जीव स्वयं पार नहीं जा सकता। केवल समर्थ सत्गुरु ही उसे सुरक्षित रूप से ले जा सकता है। इसलिए मौलाना रूमी हमें सावधान करते हैं :

दामने ऊ गीर ज़ूद ऐ बे गुमां
ता रही अज़ आफ़ ते आख़िर ज़मां

– मौलाना रूमी

अर्थात, इस रास्ते का कोई वाकिफ़ साथ ले लो, क्योंकि ऐसे यात्री के बिना रास्ते में बहुत मुश्किलें और गिरावटे हैं।

जबकि हम इस संसार में बहुत बुरी तरह फँसे बैठे हैं, कबीर साहिब ने इस संसार रूपी भयानक सागर में हमारी इस असहाय अवस्था का बड़ा सुंदर विवरण दिया है। उनका कहना है कि वास्तविक आनंद का मार्ग बड़ा लंबा तथा भयानक है और हम इंद्रिय–भोगों में लीन होकर गहरे सो रहे हैं। वह हमें भ्रम की नींद से जागने और ऊपरी मंडलों की यात्रा प्रारंभ करने का आदेश देते हैं। हम सभी जीवन की कठिन बाधाओं में फँसे पड़े हैं, जिन सबका हमारे दिमाग़ पर भारी बोझ लदा पड़ा है। हमारे तथाकथित मित्र तथा संबंधी अधिकतर हमारे पुराने जन्मों के कर्ज़ों को लेन–देन करने वाले हैं। वह अनेकों ग़लत तरीक़ों से हमें टुकड़े कर–करके बेदर्दी से मारते हैं। लेकिन आश्चर्य की बात है कि हम नासमझी के कारण फिर भी उन्हें बड़े प्रेम के साथ सीने से चिपटाए हैं। हमको यह पता नहीं कि वह हमारा ही ख़ून चूस रहे हैं। जिनको हम अपना समझे बैठे हैं,

वह हमारा भ्रम है और कई बार पलक झपकते ही उन्हें हमसे छीन लिया जाता है। मृत्यु के बाद जीव को धर्मराज के दरबार में फ़ैसला सुनने के लिए अकेले ही उस मार्ग पर जाना पड़ता है। हम जीर्ण शरीर रूपी बिना पतवार की नाव में सवार होकर, इन भयानक तूफ़ानों, लहरों और ज्वारभाटों से भरे इस संसार रूपी भवसागर में निसहाय बने इधर–उधर बह रहे हैं। इस अवस्था में हम किस प्रकार नदी के दूसरी ओर पहुँच सकते हैं। औरों पर सदा रहम खाते–खाते हम स्वयं अपने जीवन रूपी खेल की बाज़ी हमेशा हारते रहते हैं और अंत में शिकार से बचे हड्डियों के ढेर के समान रह जाते हैं।

उस समय कुछ समझ नहीं आता कि कहाँ जाएँ? हमारा ज्ञान मृत्यु के चक्र तक सीमित है। उसके बाद की बातों से हम पूर्णतया अनभिज्ञ (अनजान) हैं। फिर हमारा बचाव किस प्रकार हो? इसके आगे सोचने में हमारी बुद्धि असमर्थ है और हम घबराकर अपने को निसहाय समझने लगते हैं।

संत–सत्गुरु यहाँ भी यहाँ से परे के लोकों में भी सदा हमारी संभाल करने का आश्वासन देते हैं। वह शिष्य के अंतर दिव्य स्वरूप दिखलाकर उसका प्रत्यक्ष अनुभव देते हैं। इतना ही नहीं, वह यह भी विश्वास दिलवाते हैं कि "जहाँ मैं जाऊँगा वहीं तुम भी जाओगे।"

दीक्षा देते समय सत्गुरु शिष्य को अंतर में स्थित आत्मा को ऊपर के दिव्य मंडलों में जाने का रहस्य सिखलाता है, जो उसमें पहले से गुप्त रूप से विद्यमान है। अंदर की यात्रा तभी संभव होती है, जब हिंदू धर्म के अनुसार हमारा अंदर का 'शिव–नेत्र' खुल जाए या ईसाई धर्म के अनुसार हमारी 'एकल–आँख' खुल जाए। इंद्रियों को दमन करके सुरत को दोनों आँखों के पीछे दो भ्रू–मध्यों के मध्य में आना होता है। यही आत्मा का स्थान है, और इसी स्थान पर अंतर की आँख खुलती है। परे के मंडलों में प्रवेश करने पर शिष्य सत्गुरु से अंतर में बातें कर सकता है और बाहर आकर भी अंतर के सब अनुभवों से पूर्णतया चेतन रह सकता है। अंतर के सूक्ष्म मंडल न कार्य–कारण की क्रिया से और न ही समय व स्थान से सीमित हैं। इस भौतिक जगत में तो जीव के हाथ में हमेशा पास रहने वाला केवल एक वर्तमान समय है। आत्मा का आत्मा के साथ संपर्क आकाश तत्त्व की विचारधाराओं व हिलोरों से संभव है।

ऊपर लिखे तो क्या इससे भी अधिक अनुभव शिष्य को प्राप्त हो सकते हैं, यदि वह अपने भजन ध्यान का अभ्यास दिन–प्रतिदिन प्रेमपूर्वक बढ़ाता जाए।

इस प्रकार शिष्य को सत्गुरु के साथ ऊपरी मंडलों में चेतन तथा आत्मिक संपर्क प्राप्त होता है– यहाँ तक कि वह उसमें लीन होकर, लय हो जाता है और इस प्रकार एक होकर उसी (सत्गुरु) का रूप बन जाता है। तब वह भी सेंट पॉल के समान यह कहने लगता है कि,

मैं ईसा में मरकर समा गया हूँ फिर भी मैं जीवित हूँ। लेकिन यह मैं नहीं मेरा पिता मुझमें बस रहा है और जो जीवन मैं इस चमड़े के शरीर में व्यतीत कर रहा हूँ वह मैं इस पिता के पुत्र पर श्रद्धा रखकर बिता रहा हूँ जो मुझे अत्यंत प्रेम करता था।

– पवित्र बाइबिल (गलातियों 2:20)

संत 'शब्द–स्नेही' होता है। वह हर समय उसमें लीन रहकर वास्तव में शब्द का ही साक्षात्कार होता है, और प्रायः यह कहता है कि,

मैं और मेरा पिता एक हैं।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 10:31)

या जैसा कि हम गुरुवाणी में कहते हैं :

पिता-पूत एकै रंगि लीने ।।

और,

पिता पूत रलि कीनी सांझ ।।

– आदि ग्रंथ (भैरउ म.5, पृ.1141)

जिससे कि सारे संसार का आध्यात्मिक कार्य भली प्रकार से हो सके।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि आध्यात्मिक व सूक्ष्म कार्यों में गुरु परमात्मा का साँझीदार है और उसी का रूप बनकर दैवी कार्यों को चलाता है।

ऊपर के दिव्य–मंडलों में कई अत्यंत आकर्षक और सुंदर मंडल हैं। ऐसे स्थानों के अत्यधिक सौंदर्य में प्रायः शिष्य के खो जाने की संभावना रहती है। इसलिए कई बार गुरु शिष्य को अपनी छत्रछाया में संभालकर इन मंडलों से पार करवाता है। मौलाना रूमी साहिब ने इसीलिए कहा कि,

मर्दे हज्जी मर्दे हाजी रा तलब ।
ख़्वाह हिन्दू, ख़्वाह तुर्को ख्वाह अरब ।।

अर्थात, यदि तुम परे की दुनिया का सफ़र करना चाहते हो तो वहाँ के किसी जानकार को अपने साथ ले लो। ऊपरी मंडलों को जानने वाला महापुरुष किसी भी धर्म व जाति का हो इसमें कोई अंतर नहीं पड़ता। वह हिंदू, तुर्क व अरबी कोई भी हो सकता है। केवल उस मार्ग का पूर्ण ज्ञाता होना चाहिए और दूसरों को उन मंडलों में ले जाने की समर्थ रखता हो।

जीवित सत्गुरु उन सूक्ष्म मंडलों का ऐसा ही जानकार होता है। वह वहाँ के मार्ग का जानकार होकर वहाँ चलता–फिरता ही नहीं, बल्कि उसकी आत्मा ऊपरी मंडलों में ख़ूब ऊँचाई तक जाती है। इस प्रकार सत्गुरु वहाँ के हर एक गुप्त रहस्य से भली प्रकार परिचित होते हैं। एक जीवित सत्गुरु का मिलना बड़ी भारी बरक़त है। सत्गुरु अपने दीक्षित शिष्य को इस दुनिया के आख़िर तक भी कभी भूलता और छोड़ता नहीं है। शिष्य को दीक्षा देने के पश्चात् गुरु सदैव दिव्य और सूक्ष्म रूप में उसके अंतर विद्यमान रहता है और शिष्य को जब तक सत्गुरु व सत्तनाम की गोद में पहुँचाकर अपना रूप नहीं बना लेता वह (गुरु) उससे अलग नहीं होता। यहाँ शिष्य गुरु में और परमात्मा में लय हो जाता है। यदि किसी समय उस राह से बेमुख हो जाता है या बेमुख कर दिया जाता है, वह फिर सत्य के इस मार्ग पर इसी जन्म या आगे आने वाले जन्मों में वापिस लाया जाता है।

यद्यपि ईसा और अन्य गुरु समय–समय पर इस भौतिक जगत को छोड़कर चले जाते रहे, पर फिर भी वह शिष्य के अंतर शब्द–रूप में सदैव विद्यमान रहते हैं, क्योंकि सत्गुरु स्थान और समय की सीमा से परे होता है। हम इन संतों में किसी न किसी के अनुयायी होते हैं। इसलिए हम इन्हीं के लिए जीवित रहना और मरना चाहते हैं। हमें इस बात का ज्ञान नहीं कि हम अपने अंदर इनसे किस प्रकार संपर्क स्थापित कर सकते हैं। ऐसा संपर्क हमारा भी स्थापित हो सकता है। यदि हमें शब्द–स्वरूप समर्थ गुरु मिल जाए, जो शब्द से हमारा संपर्क बनाकर हमें उसी का रूप बना दे, जिस अमरत्व जीवन को अतीत काल से सभी महापुरुष पा चुके हैं।

मुझे उस महिला की स्मृति आ जाती है जो 1955 में मुझे अमरीका में मिली थी। वह अपने अंतर में क्राइस्ट से मिलती थी और इसी से आत्म–संतुष्ट थी। वह सोचती थी कि उसे आध्यात्मिक मार्ग पर किसी प्रकार की और प्रगति करने की आवश्यकता नहीं। एक दिन मैंने अचानक उसे सुझाव दिया कि अब जब वह ईसा मसीह से मिले, तो उनसे पूछे कि अंदर की आगे और प्रगति करने के

लिए वह क्या क़दम उठाए। अगले ही दिन वह मेरे पास आकर दीक्षा लेने पर ज़ोर देने लगी। तब उसने स्वयं बतलाया कि ईसा ने उसे कहा है कि अगर तुम आगे प्रगति करना चाहते हो, तो किसी जीवित पूर्ण सत्गुरु की शरण में दीक्षा लो।

अंतर में बैठी शक्तियाँ जिज्ञासु को कभी भी प्रगति करने से नहीं रोकतीं और यदि कोई व्यक्ति किसी पहले संत से मिलकर प्रगति के बारे में पूछता है, तो वह (संत) उसे पूरा निर्देश देता है कि वह किस प्रकार आगे बढ़ सकता है।

सत्गुरु चुने हुए एक शिष्यों को पाँचवे मंडल, सचखंड में ले जाकर वहाँ के सुंदर दृश्य दिखलाता है। और कुछ को वहाँ जाने का केवल निर्देश दिया जाता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कुल मिलाकर आठ मंडल हैं। आठवाँ मंडल हमारा अंतिम लक्ष्य है। इसको केवल वही प्राप्त कर सकते हैं, जिन्हें पूर्ण मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

सतलोक के ऊपर धावै ।।
अलख अगम की जब गत पावै ।।
तिस के ऊपर सन्तन धाम ।।
नानक दास कियो बिसराम ।।

सेंट जॉन ने भी, जिनमें आलौकिक शक्ति का साक्षात्कार होता था, अपने अंतर के अनुभवों का वर्णन इस प्रकार किया है :

प्रभु से मिलन होने के दिन मेरी आत्मा का पूरा विकास हो चुका था। मैंने पीछे से ड्रम की एक ज़ोरदार आवाज़ सुनी जो कह रही थी कि मैं सारी सृष्टि का आदि और अंत हूँ। मैंने उस आवाज़ को पीछे मुड़कर देखना चाहा वह बिल्कुल मनुष्य के पैदा हुए पुत्र के समान थी। उसकी आँखें आग के गोले की तरह चमकती थी। उसकी आवाज़ इतनी प्रभावशाली थी मा'नो कितनी ही नदी और सागरों का पानी मिलकर महान गरज कर रहा हो। उसके शरीर का तेज सूर्य के समान प्रकाशित था। जब मैंने उसे देखा तो मैं उसके चरणों पर गिरा उस समय मेरा शरीर बिल्कुल बेजान-सा था। उसने अपना दायाँ हाथ मेरे ऊपर

यह कहते रखा कि डरो मत पहला मैं पहला और आख़िरी हूँ। जिसके कान हैं वह उस आत्मा की आवाज़ सुने। जो मेरे पास आता है मैं उसे खाने को जीवन देने वाला ऐसा फल दूँगा जिसको खाकर उसे दूसरी मृत्यु का कष्ट नहीं होगा। उसे मैं खाने को गुप्त भोजन और एक श्वेत पत्थर दूँगा जिस पर एक नया नाम लिखा होगा। जिसको उस व्यक्ति के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं पढ़ सकेगा। उसे पहनने को श्वेत पोशाक मिलेगी। उसका नाम मैं जीवन की किताब में से कभी नहीं मिटाऊँगा। मैं परमात्मा के मंदिर में उसका स्तंभ बना दूँगा। मैं तुम्हें यही सलाह दूँगा कि तुम मुझसे वह सोना ख़रीदो जो मैंने आग में तपा रखा है जिसको पाकर तुम हमेशा के लिए अमीर हो जाओगे। और सदा श्वेत वस्त्र धारण करोगे। तम्हारी आँखों में मैं एक ऐसी चीज़ लगा दूँगा जिससे तुम हमेशा के देखने वाले हो जाओगे।

– पवित्र बाइबिल (रहस्योद्‌घाटन अ.1,2,3)

कुरिंथियों की दूसरी पुस्तक के 12वें अध्याय में सेंट पॉल अपने देखे दृश्यों और अनुभवों का वर्णन करके तीसरे मंडल का विवरण बतलाते हैं कि,

मैंने तीसरे मंडल ब्रह्मंड में पड़े एक व्यक्ति को जाना, जो न मालूम शरीर में है या शरीर से बाहर है इसका परमात्मा को ज्ञान होगा। परंतु किस प्रकार वह स्वर्ग में पहुँचा और कैसे उसने उन शब्दों को सुना जिनको बोला भी नहीं जा सकता। इन सबका वर्णन करना उसके लिए वहाँ के विधान के अनुसार अनुचित है।

– पवित्र बाइबिल (II कुरिंथियों 12:2-4)

सभी गुरु जो भी आज तक आए, अंतर के अनुभवों को बहुत संक्षिप्त में बतलाकर रुक जाते हैं। शम्स तबरेज़ कहते हैं :

ज़बाने ख़ामा नदारद सरे बयाने फ़राक़,
वगरना शरह दहम बातू दास्ताने फ़राक़।

अर्थात, जब मैं अपने प्रीतम की बातें बतलाने लगता हूँ, तो मेरा क़लम स्वयं लड़खड़ाता है और वह पृष्ठ भी फट जाता है।

मौलाना रूमी भी अंतर के अनुभवों को न बतलाने का आदेश देते हैं। उनका कहना है तुम अंतर की अपनी देखी बातों को बतला सकते हो। इधर–उधर से कोई बात नहीं मिला सकते, वरना वह तुम्हारे सारे देखे दृश्यों को ऐसे समाप्त कर देगा, जैसे कि कभी वह थे ही नहीं।

ऐसे ही कबीर साहिब ने बड़े ज़ोरदार शब्दों में कहा है कि,

राम पदारथु पाय के कबीरा गांठि न खोल।
नही पटणु नही पारखु नहीं गाहकु नही मोलु ।।

– आदि ग्रंथ (सलोक भगत कबीर, पृ.1365)

इस प्रसंग के अंत में हम विख्यात 'मसनवी' में रूमी साहिब के चिर स्मरणीय शब्दों को देते हैं कहना है कि,

बीश अज़िन गुफ़्तन मरा दर ख़ूए नीस्त,
बह्र रा गुंजायश अंदर जूई नीस्त।

अर्थात, यह उचित नहीं कि मैं तुम्हें अधिक विस्तार में बतलाऊँ, क्योंकि नदी की सतह से समुद्र की शक्ति का ज्ञान नहीं हो सकता।

इस प्रकार प्राचीन संतों ने आत्मा के गुप्त अनुभवों को अपने अंदर छिपाकर एक पवित्र धरोहर के रूप में रखा, जिसका थोड़ा सा दृश्य थोड़े से उन गुरुमुखों को दिया, जिनको उन्होंने कसौटी पर कसकर चुना था। वास्तव में यह ऐसा विषय नहीं, जिसका वर्णन केवल शब्दों में किया जा सके। मिठाई का वास्तविक आनंद उसके खाने से मिलता है। आत्म के साक्षात्कार करने की यह एक व्यावहारिक क्रिया है, जिसमें अंतर्मुख होकर अंतर्ध्यान होना होता है। जिस किसी की पूर्ण सत्गुरु की कृपा से यह रसाई हो जाती है, जो अंतर में परे तक जाता है, उसी को वास्तव में अनमोल रत्न मिलता है। इस वास्तविकता का थोड़ा सा अनुभव होने पर, व्यक्ति सारे भौतिक तत्त्वों से परे होकर यथार्थता को पाता है। यहाँ यह नाशवान जीव एकदम अमर आत्मा में परिवर्तित होता है और आत्मा और भौतिक विषयों को जोड़ने वाली गाँठ को समाप्त कर देता है। इस प्रकार जीवन और मृत्यु का रहस्य सुलझता है।

सारी नाशवान क्रियाओं को पार करके और मृत्यु के हर एक पहलू पर विजय पाकर अंत में केवल जीवन ही रह जाता है।

आगे आने वाले पृष्ठों में गुप्त सिद्धांतों को इस सीमित भाषा में बतलाने का प्रयास किया गया है, जो वास्तविकता को पूरी तौर से बतलाने में असमर्थ है। ईश्वर करे कि किसी सत्पुरुष के चरणों में बैठकर अभिलाषियों को उसकी शक्ति का पूरा ज्ञान हा जाए। वह सत्पुरुष व्यक्ति को सामने बिठाकर इस जीवन में उसी समय अंतर के गुप्त रहस्यों का ज्ञान देने की सामर्थ्य रखता हो। क्योंकि क्या मालूम इस जीवन के समाप्त होने पर सत्य का अनुभव मिले या न मिले।

जैसा आश्वासन कि आज के तथाकथित गुरुजन देते हैं जिनसे आज दुनिया भरी पड़ी है। इससे बचने के लिए ईसा मसीह ने प्रभावपूर्ण चेतावनी दी है।

ढोंगी पैग़ंबरों से बचो, जो भेड़ की पोशाक़ में तुम्हारे
सामने आते हैं, लेकिन अंदर में भेड़िए का रूप होते हैं।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 7:15)

अंधे को यदि अंधा राह दिखाए, तो दोनों गड्ढे में गिरते हैं। इसलिए यह अत्यंत आवश्यक है कि व्यक्ति को समर्थ गुरु पाने की पूर्ण खोज करनी चाहिए। उसकी शरण में आने से पहले अपनी पूरी तसल्ली कर लेनी चाहिए कि क्या वह परमात्मा के मार्ग पर जाने वाला समर्थ गुरु है। अगर उसको सारा जीवन इसी खोज में लगाना पड़े, तो भी कोई चिंता की बात नहीं, बजाय इसके कि वह ग़लत गुरुओं के हाथ में पड़ जाए और इस प्रकार अपने जीवन के अमूल्य सुअवसर को हाथ से खो दे। इस तरह से की गई खोज बेकार नहीं जाती। "ढूँढो, और वह तुम्हें मिलेगा।"

m

प्रकृति में कुछ नष्ट होता नहीं

मृत्यु और अमर जीवन दोनों ने प्रकृति की भौतिक और आत्मिक सभी वस्तुओं को दृढ़ता से जकड़ रखा है। आत्मा को आगे बढाने के लिए भौतिक तत्त्व एक पर्दा मात्र ही है। सर्वव्यापी आत्मा, सृष्टि के विभिन्न स्तरों पर अनेक रंग रूप में अपना साक्षात्कार करने के लिए भौतिक तत्त्वों को विभिन्न प्रकार की मात्राओं और आवाज़ों में आकर्षित करती है। भौतिक तथा स्थूल आवरण को धारण किए बिना निरोल आत्मा इस भौतिक जगत में अपना साक्षात्कार नहीं कर सकती।

चमड़े की इन आँखों से सूक्ष्म आत्मा को नहीं जाना जा सकता जिस प्रकार बसन्त ऋतु के आने का हमें फूलों, फलों, नई पल्लवों तथा मधुर सुगंध और रस आदि से मालूम पड़ता है।

इस पृथ्वी पर मानव अपने आपमें तीन सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करता है। क्योंकि उसके अंतर में शरीर मन तथा आत्मा तीनों का समावेश है। इनमें आत्मा प्रभु की अंश है, जो शरीर तथा मन दोनों को जीवन प्रदान करके व्यक्ति के सारे शरीर में परमात्मा के प्राणों का संचार करती है।

मानव शरीर एक अलग प्रकार का पदार्थ मालूम होता है, क्योंकि उसको अंतर में स्थित आत्मा अपना एक अलग व्यक्तित्त्व रखती है। उसी प्रकार जैसे सूर्य पानी से भरे अनेकों बर्तनों में अपना अलग–अलग प्रतिबिंब रखता है। अनेक तत्त्वों से बना यह मानव शरीर मृत्यु के समय आकाश तत्त्व में लीन हो जाता है और आत्मा फिर परमात्मा में लीन हो जाती है :

> *जैसे ही 'चांदी की डोर' ढीली पड़ती है, वह सुनहरी प्याला झरने में घड़े के समान तथा हौद के पहिए या चक्र के समान टूट जाती है। तब शरीर मिट्टी बनकर पृथ्वी में और आत्मा परमात्मा में मिल जाता है, जिसने उसे यह रूप दिया था।*
>
> – पवित्र बाइबिल (सभा उपदेशक 12:6-7)

एक जीवित व्यक्ति का अस्तित्व उस दैवी शक्ति से, जो उसमें विद्यमान है, भिन्न और पृथक नहीं वह उस मह[illegible] शक्ति से बना है, जो चेतन धाराओं

के नियमित समूह के द्वारा स्थूल मंडल में कार्य करती है। उसी से उसमें भी चेतनता की अवस्था बनी रहती है। व्यक्ति तभी तक जीवित रहता है, जब तक उसके शारीरिक आवरण में महान शक्ति का संचार व प्रवाह होता रहता है। जब वह सत्ता उसमें से हटती है, तब उसका शरीर कार्य करना बंद कर देता है। फिर वह जीवित व्यक्ति नहीं कहलाता। तब क्या रह जाता है? मिट्टी के ढेर के अलावा कुछ भी नहीं। यह मिट्टी का वही रूप है, जो उसके शरीर का पहले भी था, लेकिन अब उसके शरीर में वह जीवन देने वाली धारा नहीं है, जो कुछ देर पहले उसके अंतर में थी। जिस प्रकार व्यक्ति में, उसी प्रकार समस्त सृष्टि में, उसी जीवन–प्रदान करने वाले सिद्धांत का साक्षात्कार है। इसी सिद्धांत के अनुसार जीवित चेतनता विभिन्न मात्राओं में जीव से लेकर समस्त भौतिक पदार्थों में विभिन्न मात्राओं में कार्य कर रही है। यह भौतिक पदार्थ हमेशा नियमित क्रम से चल रहे हैं और वह महान सत्ता उनको अनेकों रूपों आकारों में बनाती और मिटाती चली जाती है। संक्षिप्त में हम यह कह सकते हैं, सारी सृष्टि की बुद्धि उसी की (सत्ता) आज्ञानुसार चलती है और सदा चलती रहेगी। यहाँ पृथ्वी का प्रत्येक कण इससे प्रभावित होकर इसकी आज्ञा पर शिव–नृत्य के समान निरंतर नाचता रहता है। शिव, शक्ति, जो जगत की माँ है, का जीवित प्रतीक है। जगत की उत्पत्ति के गुप्त सिद्धांत में नाशवान तत्त्वों का कोई स्थान नहीं, क्योंकि बिना उस शक्ति के, जो पदार्थ के अंतर स्थित है, उसका कोई अस्तित्व नहीं। वास्तव में पदार्थ शक्ति का छिपा हुआ रूप है।

प्राचीन दर्शन शास्त्र में 'अस्तित्व' और 'अवस्था' में भेद किया गया था। लोगोस, अस्तित्व अपरिवर्तनशील और अविनाशी परमात्मा का संसार है, जबकि अवस्था संसार में आगे और बाहर होने वाली गति का भाव और विस्तार है, जिसमें प्रतिक्षण निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं।

चिकित्सक और जीव विज्ञान के ज्ञाता, जिस प्रकार हमें फूलों, फलों, बाग़वानी की अनेक प्रकार की अयांत्रिक और रसायनिक क्रियाओं के बारे में बतलातें हैं, जो मानव शरीर के अंतर या यह कहें कि जो पेड़, फूल, फल, चींटी, हाथी या किसी भी जीव के अंदर हो रही है। लेकिन वह उन पृष्ठों का उत्तर देने में असमर्थ है कि वह क्यों जीवित रहते हैं, कैसे जीवित रहते हैं, किस उद्देश्य के लिए जीवित हैं, स्वयं जीवन क्या है और सबसे महत्त्वपूर्ण कि चेतनता कौन सी चीज़ है जो सृष्टि के सारे क्षेत्रों और स्तरों में जीवन प्रदान करने की विशेषता

रखती है?

आकाश तत्त्व से यह साबित (प्रमाणित) होना है कि जीवन अविनाशी है। यह हमेशा रहने वाली (अनंत) क्रिया है। एक के बाद दूसरा रूप ग्रहण करने के पश्चात् यह हमेशा आगे बढ़ती जाती है। कभी प्रकट कभी गुप्त कभी फिर उदय होकर यह क्रिया हमेशा उसी तरह चलती रहती है, जैसे कि काल रूपी नदी पर हमेशा लहरें और बुलबुले उठते और समाप्त होते रहते हैं, लेकिन वह नदी हमेशा बहती रहती है। प्रकृति तो जीवन और भौतिक पदार्थ का केवल एक महान स्रोत है, जिसमें न कोई चीज़ बेकार जाती है और न ही समाप्त होती है। हाँ उसका अनेक प्रकार से रूप परिवर्तन हो सकता है। अपने अंदर नाना प्रकार के रंग और रूप दिखाने वाले खिलौने के समान इसमें भी पलक झपकते ही अनेकों परिवर्तन संभव हो जाते हैं। साधारणतया, आमतौर पर इसी परिवर्तनशील क्रिया को मृत्यु कहते हैं। जो एक ओर मृत्यु होती है वहीं किसी दूसरी ओर, दूसरे स्थान व मंडल में जन्म कहलाती है। उसी प्रकार समुद्र से अदृश्य रूप में उठी हुई भाप पहाड़ की चोटी पर बर्फ़ के रूप में बदल जाती है, जो सबको दिखाई देती है। यह दिखाई देने वाली बर्फ़ एक बार फिर मृत्यु या रूप परिवर्तन की उल्टी क्रिया करती है। जब यह बर्फ पिघलकर पानी में बदलती है और यह पानी फिर अदृश्य भाप का रूप धारण करता है। इस प्रकार यह कारण तथा प्रभाव की क्रिया तथा प्रतिक्रिया लगातार चलाती रहती है। इसी प्रकार मनुष्य का स्थूल आवरण पहनकर यह आत्मा दृश्य रूप धारण करती है। फिर वही मानव इस स्थूल जगत के जीवन रूपी नाटक में पुत्र, भाई, पति, पिता आदि बाल्य, युवा और वृद्ध विभिन्न अवस्थाओं पर कार्य कर चुकने के बाद अंत में अदृश्य रूप में बदलता (परिवर्तन) है, जब उसकी आत्मा शरीर छोड़ जाती है और उसको चारों ओर बैठे सांसारिक सगे–संबंधियों को घबराहट पैदा होती है। उस समय उसको सारे सांसारिक संबंध, जो उसकी जीवन–यात्रा में इस जगत में बने थे, समाप्त हो जाते हैं। वास्तव में यही सब कुछ अंतिम परिवर्तन के समय होता है, जब यह भौतिक शरीर अलग होकर पंचभूत तत्त्वों में मिलता है और आत्मा रूपी जीवनधारा अपने महान दैवी जीवन सिद्धांत में समा जाता है, जो कि स्वभाव में अत्यंत नियमित है और अन्य रसायन विज्ञानों के समान अभौतिक और यांत्रिक नहीं।

साधारणतया जैसा हम बोल भाषा से समझते हैं और जैसा ऊपर से इसका रूप हमें मालूम होता है, मृत्यु वास्तव में वैसी नहीं है। इस स्थूल और भौतिक

जगत में ही केवल मृत्यु और जीवन नामक संबंधित शब्द है। वास्तव में इन दोनों में कोई भेद नहीं। सत्य तो यह है हम एक को दूसरे के विरुद्ध नहीं रख सकते, क्योंकि मृत्यु न तो जीवन को हड़प सकती है और न ही उसे समाप्त कर सकती है। यह एक परस्पर संबंधी क्रिया के समान है, जो एक से दूसरे में बदली जा सकती है– जैसे सिक्के के दोनों तरफ़ (दिशाएँ) धुरी पर एक समान चक्र काटती हैं। क्या हम दिन और रात, अंधेरे और प्रकाश को एक के बाद फिर आते–जाते नहीं देखते, जिस तरह पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती और चक्कर काटती है, तो किसी भाग में अंधकार और किसी में प्रकाश होता है, जबकि सूर्य उसी प्रकार से हर एक स्थान पर अपना प्रकाश दे रहा है।

जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है, मृत्यु का अर्थपूर्ण रूप से समाप्त (अंत) होना या उसके अस्तित्व का समाप्त होना नहीं यह चेतनता के अस्तित्व का एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवर्तित होने के अलावा (अतिरिक्त) और कुछ भी नहीं। इसके विपरीत जीवन एक सदा रहने वाली प्रतिक्रिया है, जिसका कोई अंत नहीं; क्योंकि जिसको हम मृत्यु कहते हैं जो फिर जीवन की ओर चलती है, वास्तव में जीवन रहित नहीं, बल्कि किसी दूसरे स्थान पर किसी और रूप में जीवन ही है। चाहे इस लोक में हो या कहीं और किसी दूसरे रूप और दूसरे नाम से, और प्रकार के वातावरण में हों। जैसा परमात्मा की ओर से हमारे कर्मों के अनुसार, 'जैसा बीजोगे वैसा काटोगे' वाले सिद्धांत से बना है। जीवन, परमपिता परमात्मा का साकार साक्षात्कार होने के कारण मृत्यु के काल–चक्र से सीमित नहीं। इसलिए मृत्यु, जीवन को जो अमर अविनाशी है समाप्त नहीं कर सकती।

अनंत काल से जितने संत हमारे बीच में आए हैं, उनके उस समय से लगातार प्रमाण हमारे पास हैं। उन सब संतों की सही शिक्षा रही है कि इस द्वैतवाद के जगत में जीवन और मृत्यु केवल शब्द–मात्र ही है। इन शब्दों का प्रयोग इस तथ्य को समझाने के लिए किया गया है कि मनुष्य के अंदर मध्य में जो चेतन अवस्था विद्यमान है, उसके ऊपरी स्तर तथा प्रभाव में परिवर्तन क्यों आता है यह तो आकाश–चक्र की दृश्य और अदृश्य अवस्थाएँ हैं जिनमें से अंतर का मनुष्य प्रवेश करके जाता है। विलाप कराने वाली भीषण और भययुक्त मृत्यु यथार्थ में (अंतर में) और अधिक सुंदर और आनंदपूर्ण जीवन में पुनर्जन्म है– जिसका यहाँ पर किसी को ज्ञान नहीं। कबीर साहिब ने कहा है :

कबीर जिस मरने ते जग डरै मेरे मनि आनन्द ।
मरने ही ते पाईए पूरण परमानंद ।।

– आदि ग्रंथ (सलोक भगत कबीर, पृ.1365)

बाइबिल में कहा है कि परमात्मा का राज्य मृत्यु से परे आता है :

जब तक व्यक्ति पुनः जन्म नहीं लेता वह परमात्मा के राज्य को नहीं देख सकता । "जब तक वह जल और आत्मा में सूक्ष्म जन्म नहीं लेता वह प्रभु के राज्य में दाख़िल नहीं हो सकता । जो व्यक्ति चमड़े के शरीर में जन्म लेकर उसमें बंधा रह जाता है वह चमड़ा ही है और जो आत्मा में जन्म लेता है वह आत्मा का रूप हो जाता है । वायु जहाँ चलती है वहीं मालूम पड़ती है तुम वहीं उसकी आवाज़ सुनते हो, पर तुम्हें यह नहीं मालूम कि वह कहाँ से आती और कहाँ जाती है । जिस आदमी का आत्मा में सूक्ष्म जन्म हो जाता है उसका भी किसी को पता नहीं चलता ।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 3:3-8)

इस प्रकार हर आगे आने वाली मृत्यु या रूप परिवर्तन के द्वारा आत्मा मिट्टी की स्थूल सीमा से स्वतंत्र होती हुई ज़्यादा प्रबल हो जाती है पहले से ज़्यादा शक्ति पाकर आत्मा और महान और विस्तृत चेतन जगत की ओर बढ़ती है।

इसी प्रसंग में मौलाना रूमी हमें बतलाते हैं :

अज़ जमादी मुर्दम व नामो शुदम ।
व ज़ नमा मुर्दम बे-हैवान बर-ज़दम ।
मुर्दम अज़ हैवानी व अदम शुदम ।
पस चेह तर्सम कि ज़ मुर्दन कम शुदम ?
हमलेह-अ दिगर ब-मिरम अज़ बशर ।
ता बर आरम अज़ मलायक पर ओ सर ।
वज़ मलक हम बायदम जस्तन ज़ जु ।
कुल्लु शय-इन हालिकुन इल्ल वज्हु-हु ।
बार-ए दिगर अज़ मलक कुर्बान शुदम ।
अन-चे अंदर वहम न-आयद आन शुवम ।
पस अदम गर्दम अदम चोन ओरग़नुन ।

गुयदम किह इन्न इलायही राजउन ।

– मसनवी (3:3901-3906)

मैं खनिज के रूप में मरकर पौदा बना,
मैं पौदे के रूप में मरकर जानवर में उठा,
मैं जानवर के रूप में मरकर मनुष्य बना।
मैं भला क्यों डरूँ ? मैं मरकर भला कब घट गया ?
अब मैं फिर एक बार, मैं मनुष्य के रूप में मरूँगा,
कि मैं आशीत फ़रिश्तों के संग उड़ान भरूँगा।
पर देवपद से भी मुझे बढ़ना है आगे,
क्योंकि प्रभु को छोड़कर सभी नाशमान हैं।
जब मैं अपनी दैवी रूह को त्यागूँगा,
मैं वो बन जाऊँगा जो कोई मन (के स्तर से)
कल्पना नहीं कर सकता।
आह! मैं मुझे अभी जीने दिया जाय,
क्योंकि अन–अस्तित्व वाद्यराज की गूँज में कहता है,
"हम उसमें लौटेंगे।"

इसलिए मूल–जीवन सिद्धांत के परिवर्तन का दूसरा नाम मृत्यु है। यह वह धुरी है, जिसके चारों ओर जीवन के कण नियमित रूप से घूमते और कार्य करते हैं। यह एक प्रकार एक सीमित वातावरण से दूसरे नियमित वातावरण के विभिन्न रूपों और विभिन्न परिस्थितियों में परिवर्तन है। यह परिवर्तन आत्मा के पूर्ण विकास को देखकर किया जाता है, जिससे यह जीवित कण और ज़्यादा चेतन होकर आत्मा के सूक्ष्म मंडलों में ऊपर उठ सकें और जीवन के ऊँचे उद्देश्यों को पा सकें।

देखो, मैं तुम्हें एक रहस्य दिखलाता हूँ हम मृत्यु में सोयेंगे नहीं बल्कि एक पल आँख झपकते ही बदल जायेंगे– भ्रष्टाचार से ऊपर उठेंगे– सदाचार को धारण करके– अविनाशी बनकर मृत्यु को समाप्त करेंगे। इस प्रकार हमें दो प्रकार से सफलता मिलेगी– एक ओर मौत की पीड़ा पर और दूसरी ओर परमात्मा के भय से मुक्त होकर प्रभु–कृपा प्राप्त होगी।

– पवित्र बाइबिल (कुरिंथियों 15:51-55)

अपरिचित व्यक्ति में एलॅक्स कॅरेल कहते हैं कि "मनुष्य असंख्य भूत छायों के बना हुआ है, जिसके बीच में ऐसी वास्तविकता है, जिसको जाना नहीं जा सकता (अबोधनीय)।" इसी बात को गुरु अमरदास ने बड़े महत्त्वपूर्ण ढंग से कहा है :

काइआ अंदरि आपे वसै अलखु न लखिआ जाई ।।

– आदि ग्रंथ (सूही म.3, पृ.754)

विष्णु के सातवें अवतार, उत्तम पुरुष और हिंदू धर्म के एक प्रसिद्ध त्रिगुणातीत श्रीकृष्ण के गुणावाद गाते हुए श्रीभगवद्गीता में आता है कि,

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ।।
देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ।।
यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदु:खसुखं धीरं सोऽमृत्वाय कल्पते ।।

– श्रीमद्भगवद्गीता (2:12,13,15)

अर्थात, ऐ पांडव पुत्र, तुम यह समझ लो कि कभी ऐसा समय नहीं था जबकि मैं, तुम या इनमें से सारे इस पृथ्वी पर नहीं थे। और न ही ऐसा कभी फिर समय आएगा जब हम आना बंद कर देंगे। जिस प्रकार आत्मा शारीरिक आवरण पहनकर बाल्य, युवा और वृद्धा अवस्था सभी का अनुभव प्राप्त करती है, उसी प्रकार यह समय पाकर एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाएगी और उस रूप में फिर इसी प्रकार की अवस्थाओं में जीवन व्यतीत करेगी। जिनको अंतर के सिद्धांतों का ज्ञान हो चुका है उन्हीं को इन बातों की समझ आती है। वह लोग संसार में रहकर मृत्यु जीवन के जो परिवर्तन आते हैं, उनसे बिल्कुल घबराते (विचलित) नहीं। उनके लिए मृत्यु और जीवन केवल दो शब्द मात्र ही हैं और यह दोनों अंतर में स्थित महाचेतन के ऊपरी (बाह्य) पहलू हैं।

अब स्पष्ट है कि लौकिक चक्र–सिद्धांत के अंतर्गत सभी वस्तुएँ सदैव चक्र में घूमती हैं और यह सभी अविनाशी हैं। शिव–नृत्य हमेशा चलता रहेगा इस नृत्य

में जन्म और मरण दोनों के देवता कार्य करते हैं। यह हमेशा (सदैव) चलने वाले जीवन चक्र के अंतर्गत मानव, परिवर्तन (मृत्यु) और उत्पत्ति की क्रिया के द्वारा सदा स्थूल से सूक्ष्म और फिर कारण में रूप बदलकर आख़िर (अंत) में आत्मिक स्वरूप के विभिन्न ऊपरी मंडलों में जाता है जब तक कि वह अपने निज रूप को पहचानकर सदैव रहने वाले चेतनता के उस सिद्धांत को पूर्ण रूप से जानकर उसका अनुभव न कर ले और अंत में उसमें लीन न हो जाए, जिसका वह केवल एक छोटा सा अंश है।

हम सब एक समान रहते हैं, चलते–फिरते हैं और उसी एक प्रभु के अंश है क्योंकि हम उसके बच्चे हैं। वह हमारा जीवन आधार है। यदि उसकी शक्ति हमारे अंदर कार्य करे, तो न हम कार्य कर सकते हैं और न ही हमारा कोई अस्तित्व है।

– पवित्र बाइबिल (कार्य 17:23-24)

एक वस्तु से उसी प्रकार की चीज़ का जन्म होगा। हर एक चीज़ चाहे पौधा, पशु या मनुष्य कुछ भी हो, अपनी ही जाति के अंश से उत्पन्न होता है यद्यपि बीज, जीव–सिद्धांत के अनुसार ही विकसित हो सकता है।

प्रभु ने बीज को अपनी इच्छानुसार शरीर दिया और इस तरह हर चीज़ को स्वयं अपना ही रूप दिया।

– पवित्र बाइबिल (I कुरिंथियों 15:38-48)

सृष्टि की सारी उत्पत्ति में जीवों से श्रेष्ठ योनि मनुष्य की है। उसमें परमात्मा का केवल एक छोटा सा अंश ही नहीं है, बल्कि पिता (परमात्मा) अपने पुत्र में गुप्त रूप में विद्यमान है और बेटा अपने बाप (प्रभु) को अंदर मज़बूती से जकड़े बैठा है– चाहे चारों ओर की भौतिक जकड़ों और अल्पज्ञान के कारण उसे इसका पता न हो। क्योंकि परमात्मा की शक्ति उसके अंतर हर समय काम करती है, इसलिए यह कहा जाता है कि मनुष्य ईश्वर के मंदिर में निवास करता है।

क्या तुम्हें पता नहीं कि तुम पुण्य और पवित्र परमात्मा का मंदिर हो और आत्मा जो परमात्मा का अंश और उसी की शक्ति है वह तुम्हारे अंतर हर समय मौजूद है?

– पवित्र बाइबिल (I कुरिंथियों 6:19)

मनुष्य एक प्रकार का अक्षरीय नाम है जो इस संसार में आई ईश्वर की शक्ति के लिए इस्तेमाल (प्रयोग) किया गया है। इस प्रकार यह तीन चीज़ों का समावेश किए हुए एक सुविख्यात सिद्धांत है, जिसमें सर्वव्यापी पिता परमात्मा, शरीर, मन और बुद्धि का आवरण पहने जीव आत्मा रूपी उसका पुत्र; और पवित्र (निरोल) दैवी आत्मा जो मानव का प्ररेणा देकर हर ग़लत काम से हटाकर सही राह पर लगाती है। इसलिए ईसाइयों के अवतार ने कहा है कि,

तुम उतने ही पूर्ण बनो, जितना कि स्वर्ग में विराजमान तुम्हारा पिता पूर्ण है।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 5:48)

पूर्णता किसी पूर्ण के द्वारा ही मिलती है।

यही पूर्णता मानव जीवन का उद्देश्य है, जिसको पाने के लिए आत्मा का विकास होता है या यूँ कहा जा सकता है कि व्यक्तिगत आत्मा स्थूल शरीर, मन तथा बुद्धि के बंधनों से ऊपर उठकर सूक्ष्म में बदलती है। फिर अंतर में चेतनता के महासागर की गहराई में उन अमूल्य भंडारों को देखती है जिसको न हमने अभी तक पाया और न जाना है। यह बड़ा ही कठिन कार्य है, लेकिन यदि किसी को समर्थ गुरु मिल जाए, जो 'परा' और 'अपरा' विद्या दोनों का ज्ञान और अनुभव देने की योग्यता रखता हो, तो इसका पाना नामुमकिन नहीं। अपराविद्या तो परा–विद्या का केवल इशारा करती है। परा–विद्या इंद्रियों से परे का ज्ञान और अनुभव है।

प्रभु का साम्राज्य केवल देखने से नहीं मिलता; यह तो आपके अंतर मौजूद है।

– पवित्र बाइबिल (लूका 17:20-21)

ईश्वर का राज्य कोई आसमानों से नीचे उतरकर नहीं आता– वह तो पहले ही मनुष्य के अंतर है और कोई भी अंतर्मुख होकर इसके सौंदर्य को देख सकता है। पर इसको देखने के लिए शरीर का मौत के समान परिवर्तन करना होगा। बेशक़ यह परिवर्तन की क्रिया अपनी इच्छा से जीवित अवस्था में की जाती है। यह क्रिया कोई नई नहीं, इसका अनुभव पुरातन काल से संतों ने अपने चुने हुए श्रेष्ठ शिष्यों को दिया है। अगर किसी एक इंसान ने किसी कार्य को किया है, तो वही कार्य दूसरा भी कर सकता है। हाँ अगर उसे किसी सत्पुरुष की सही मदद

(सहायता) और दया (कृपा) मिल जाए। हर संत ने अपने जीवन को बनाने में काफ़ी मेहनत की है। उसका अपना अतीत है। इसलिए पापी से पापी मनुष्य भी संत बन सकता है। उसका भविष्य उसके अपने हाथ में है।

m

2.

जीवन की ज्योति

ईश्वर के बहुत फ़िज़ूलख़र्च (अपव्ययी) बच्चों की तरह हम सभी दूर देश इस संसार में अपने पिता की गुप्त संभाव्य पूँजी को लेकर आए हैं। भौतिक जगत की लुभाने वाली चीज़ों में लालायित (ललचा) होकर, हम इस पूँजी को व्यर्थ गंवा रहे हैं। इतना ही नहीं यहाँ की भूल–भूल्लयों में फँसकर हम अपने परम पिता को और उससे संबंधित अनेकों बातों को भूल चुके हैं। यहाँ तक कि हमें अपने दिव्य–स्वरूप का भी ज्ञान नहीं। देह धारण करके और उसमें फँसकर हम अपने अंतर के विवेक को भी भुला चुके हैं, जिससे हमारी इस जगत में हर पल संभाल होती है। इस तरह आत्मा के पहलू से हम मृतक के समान हैं, शारीरिक और मानसिक स्तर पर हमने कला–विज्ञान तथा शिल्प–विज्ञान आदि में आश्चर्यजनक सफलताएँ पाई हैं। लेकिन फिर भी हमें जीवन में शांति नहीं मिली। सर्वशक्तिमान प्रकृति ने अपने हाथों से पाले हुए इस लाड़ले पुत्र मानव को सभी सहूलतें (सुविधाएँ) दी हैं, फिर भी हम हमेशा भय से भरा जीवन बिताते हैं। हम केवल दूसरों पर ही अविश्वास नहीं करते, बल्कि स्वयं अपने आप पर भी करते हैं। हम जीवन रूपी भवसागर के पानी के प्रचंड वेग में बेअख़्तियार निर्बल (बेसहारा) होकर निराशा से भरे बहे जा रहे हैं। जहाँ से इस जीवन रूपी नौका के मस्तूल को उलटने से बचाने के लिए लंगर डालने का भी कोई सहारा दिखाई नहीं देता।

मनुष्य इस महान सृष्टि का एक छोटा सा अंश है। मनुष्य और सृष्टि इन दोनों का आपस में घना रिश्ता (घनिष्ठ संबंध) है। बाहर से उससे हटने पर अंतर में सब कुछ मिल जाता है। चाहे अंतर में बैठी आत्मा, शरीर तथा मन के थपेड़ों और भारी बोझों से लदी है, लेकिन फिर भी यह इन सभी आवरणों को तोड़कर उनसे बाहर निकलने की सामर्थ्य रखती है। शरीर से ऊपर उठने पर उसे महान परमात्मा की अनंत शक्ति और आत्मा के अविनाशी तथा सत्य स्वरूप का साक्षात्कार होता है।

इस विषय पर अनेकों संतों के हमारे पास प्रमाण हैं :

चाहे तू अन्तरिक्ष में रहता है, परन्तु तेरी जड़ें उस पार हैं।

इस तरफ़ को बन्द करना सीख और अनन्त मैदानों में उड़ान भर क्योंकि जब तक कोई इन्द्रियों के घाट के ऊपर नहीं उठता, वह प्रभु के संसार से अनजान रहता है। यत्न करता रह जब तक कि तू पिंजरे से पूरी तरह स्वतंत्र नहीं हो जाता। तुझे पता लगेगा कि नीचे के मंडलों का अभिमान कितना व्यर्थ है। एक बार तू शरीर और असकी जकड़ों से ऊपर उठ गया, तेरी आत्मा प्रभु की महानता की गवाही भरेगी। तेरा असली ठिकाना वास्तव में प्रभु का तख़्त है। धिक्कार है कि तू रहने के लिए टूटी–फूटी झोंपड़ी चुनता है। इस शरीर छोड़ने के बाद भी तेरा एक शरीर रहता है, तो फिर तू क्यों इससे बाहर आने से डरता है। ऐ दोस्त!इस मॉसल जीवन से पार हो, ताकि तू जीवन की ज्योति का अनुभव कर सके। सचमुच ही तू सारी सृष्टि की कला है। नहीं, नहीं, यह और इसके बाद के दोनों संसार तेरे भीतर हैं। तुझसे ही सब ज्ञान प्रकट हुए हैं और प्रभु अपने गुप्त भेदों को तेरे ही सामने प्रकट करता है। संक्षेप में, बेशक तू छोटा दिखाई देता है, फिर भी सारी सृष्टि तेरे अंदर ही बसी है। तुझे मानव–शरीर और देव–आत्मा मिली है। तू मर्ज़ी से सारी दुनिया में भ्रमण कर सकता है तथा आकाशों में उड़ान भर सकता है। कितना आनन्द आएगा जब तू शरीर को यहाँ नीचे छोड़कर आत्मा के पंखों पर सवार होकर सबसे ऊपर के स्वर्ग में जाएगा। अपने इस तत्वों के बने हुए हाड़–माँस के शरीर को छोड़ और अपने मन और आत्मा को लेकर कहीं ऊपर चला जा। यदि तू इस हाड़–माँस के ठीकरे से बाहर आ सकेगा, तंरा वहाँ जाना सम्भव होगा, जहाँ हाड़–माँस होता ही नहीं। हाड़–माँस का जीवन मात्र भोजन और पानी पर निर्भर है। धरती पर तेरे वस्त्र इसी के बने हैं। रोज़ रात तू इस मुर्दा–घर से बाहर क्यों नहीं निकलता ? क्योंकि तेरे हाथ और पैर इस धरती के नहीं है। तेरे लिए इतना जानना काफ़ी है कि तेरे

अन्दर एक द्वार प्रभु की ओर जाता है। जब एक बार तू इस क़ैदख़ाने के बाहर आ गया, तो बिना प्रयत्न के एक नए संसार में जा उतरेगा।

पूर्ण संत समय–समय पर आकर हमें अपने अंतर की उस गुप्त शक्ति की याद दिलाते हैं, जिसको हमने मन तथा प्रकृति में फँसकर बहुत अरसे (चिरकाल) से बिल्कुल भुला दिया है। परमात्मा की अपार कृपा से यह मानव जीवन हमें किसी ख़ास काम को पूरा करने के लिए मिला है। इसमें रहकर हमने उस मार्ग पर आगे बढ़ना है, जिस पर हम अभी तक नहीं गए। उन क्षेत्रों को जानना है, जिनका अभी तक ज्ञान नहीं (अपरिचित क्षेत्रों से परिचित होना है)। फिर अपने अंदर की उस वस्तु की खोज करनी है, जो हमारी अपनी वस्तु है और यथार्थ है। मनुष्य का जन्म लेने में यही एक विशेष अधिकार मिलता है। परिवर्तन की वह लंबी क्रिया, जिसको मृत्यु कहते हैं और जो परिवर्तन–चक्र की अंतिम क्रिया है। चट्टानों, खनिज के बाद वनस्पति, वनस्पति की योनि के बाद कीड़े–मकोड़े, उसके बाद पक्षियों की योनि फिर पशुओं और जानवरों की योनि में से निकलकर, तब कहीं मनुष्य का जन्म मिलता है। मनुष्य के अंतर विवेक तत्त्व प्रबल होता है, जिसका पहले चारों योनियों में अभाव है या न होने के बराबर है। इसी आकाश तत्त्व के कारण मानव सत्य और असत्य, उचित और अनुचित का निर्णय कर सकता है। इस प्रकार वह जीवन के ऊँचे और सदाचारी नियमों को चुनकर अपने जीवन को प्रगतिशील बना सकता है। इस विवेक तत्त्व के द्वारा वह मन बुद्धि के घाट से उठकर ऊपर चेतन जगत में उठता है, जहाँ उसे स्थूल जगत से परे चेतन जगत का ज्ञान और अनुभव मिलता है। यहाँ पहुँचकर उसका आत्मा में दूसरा जन्म होता है। यह वास्तव में एक ऐसी क्रिया है, जिसका मनुष्य जीवन में ही संभव है– चाहे अभी हमें उसका ज्ञान न होकर बाद में हो।

जंग नामक एक दार्शनिक का कहना है, "हमारी आत्मा में हमारे समस्त जीवन का भंडार भरा पड़ा है परंतु यह केवल हमारे अतीत से ही संबंधित नहीं, बल्कि इससे हमारे भविष्य का प्रारम्भ होना है।

अनेक फल–फूल को जन्म देने वाली माता के समान यही वह प्रारंभिक बिंदु है, जहाँ से जीवन के समस्त भविष्य ने उदय होकर प्रकट होना है। अतीत इतिहास के समान भविष्य में आने वाली संभावनाएँ भी हमारी अंतर की भावनाओं से स्पष्टतया प्रकट हो जाती हैं। इन मनोवैज्ञानिक तत्त्वों से उत्पन्न होने वाली

अमर जीवन की भावनाएँ काफ़ी उचित होती हैं।

इस मिट्टी के आवरण को धारण करके और मन से संचालित होकर यह मानव इस विशाल सृष्टि में मिट्टी के एक नन्हें बालक के समान निर्बल प्रकृति वाला है। लेकिन आत्मा के पहलू से वह असीम और सर्वव्यापक है। देखने में छोटी सी मालूम होने वाली उसकी व्यक्तिगत आत्मा मुकुट के ऐसे बहुमूल्य हीरे के समान है, जिसके मूल्य का अनुमान लगाना भी कठिन हो इसी विषय पर भीख नामक एक संत का कहना है :

भीखा भूखा को नहीं सबकी गठरी लाल,
गिरह खोल देखे नहीं ताते भया कंगाल ।

दक्षिणेश्वर के रामकृष्ण परमहंस नामक साधु कहते हैं, "परमात्मा सबमें है, पर सब उसमें नहीं हैं।" गुरु नानक हमको इससे निकलने का राह बतलाते हैं, जिससे उस महान रहस्य का भेद ज्ञात होता है और उससे सभी अन्य बातों को भी जाना जा सकता है।

मन जीतै जगु जीतु ।।

– आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 28, पृ.6)

उनकी बड़ी साधारण सी युक्ति है। इस समय हमारा मन प्रकृति की अनेकों इच्छाओं में जकड़ा होने के कारण हमें विभिन्न दिशाओं में बेअख़्तियार खींचता जा रहा है।

समस्त सृष्टि में प्रवाहित प्रभु के रंग से रंगकर हमें चारों दिशाओं में फैले मन को समेटकर फिर उसके वास्तविक और पूर्ण स्वरूप में लाना होगा, क्योंकि तभी ऊपर रहने वाली आत्मा को नीचे शरीर में और बाहरी आकर्षणों में हर समय खेंचने वाला मन अपना यह कार्य बंद करके फिर आत्मा को अपने ऊपरी दिव्य और सूक्ष्म मंडलों में स्वेच्छा से ले जाने में सहायक यंत्र के समान होगा। समुद्र के अत्यंत चंचल देवता प्रोटियस के समान जब तक यह हज़ार मुंह वाला मन अनुशासित होकर बस में नहीं आता तब तक यह गिरगिट के समान स्वेच्छानुसार अनेकों रंग–रूप, स्वांग और अद्‌भुत ढंग अपनाकर हमें नचाता रहता है। जब तक यह मन पृथ्वी से और उसकी हर एक भौतिक वस्तु से आकर्षित है, यह उससे शक्ति और बल पाकर जीव को चलाता रहता है। इसलिए इस मन को वायु में भौतिक जगत से बहुत ऊपर उठाकर उसके प्रभाव से पृथक रखना होगा, जैसे

हरक्यूलिस ने राक्षस से बचाने के लिए प्रोटियस के साथ युद्ध किया था, जिस पर उस समय तक विजय प्राप्त न हो सकी, जब तक सांसारिक शक्ति के साथ संबंधित होकर वह उससे शक्ति प्राप्त करता रहा। एक बार मन जब ऊपरी मंडलों से प्रवाहित उस दिव्य और मधुर 'शब्द' (संगीत) के साथ लग जाता है, तब यह संसार की ओर आकर्षित करने वाले सभी इंद्री भोगों से निर्लिप्त होकर ऊपर उठता है। इसी क्रिया से धीरे–धीरे मनुष्य को जीवन काल में मृत्यु के समान अनुभव मिलता है और मन भी ऊपर उठकर चिर आकाश में लय होने का प्रयास करता है, जो इसका अपना असली घर है और जहाँ इसकी अतीत की स्मृतियाँ संचित हुई पड़ी हैं। वहीं से इसके प्राण निरोल चेतन अवस्था में मन और प्राण दोनों के आवरणों को धारण करके नीचे धरती पर प्रवाहित होते हैं। इन दोनों के बीच में मन रूपी यंत्र को रखा गया है, ताकि इंद्री भोगों से प्रवाहित शरीर के अनमयी–कोष के आवरण में रहकर भी आत्मा उचित प्रकार से कार्य कर सके।

शरीर के जादू के डिब्बे में संकुचित और सीमित रूप में बंद होने पर भी हम इसकी जकड़ों में बंधे नहीं हैं– चाहे हम हर पल कार्य करने और सोचने में अपने को एक बंधे क़ैदी के समान मानते हैं– वह केवल इसलिए क्योंकि हम इसके भेद से अपरिचित हैं। शरीर में बस रही अपनी आत्मा को इन आवरणों से किस प्रकार मुक्त करके ऊपरी मंडलों में ले जाएँ। प्राचीनकाल से सभी संत एक आवाज़ से हमें यही बतलाते आए हैं कि "अंदर जाओ और अंतर्मुख होकर देखो" क्योंकि वह राह दिखाने वाली जीवन–ज्योति वहीं पर हमें मिलती है, जो छाया रहित है और जो स्वयं में आलौकिक और प्रकाश वाली है। इस शरीर रूपी क़ैदखाने में, जिसमें हम निवास करते हैं, चारों ओर अंधकार से घिरा हुआ है। इसी में हम आशा और संतोष की किरण को पा सकते हैं। इसीलिए यूहन्ना ने कहा है :

अंधेरे में ज्योति का प्रकाश हो रहा है, लेकिन अंधकार को उसका पता नहीं।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 1:5)

सेंट ल्यूक भी कहते हैं :

सावधान रहो कि जो ज्योति तुम्हारे अंदर प्रकाश दे रही है, उस पर किसी प्रकार से स्याही का पर्दा न पड़ जाए।

– पवित्र बाइबिल (लूका 11:35)

यही वह ज्योति है, जिसको "दिन का सितारा कहा गया है"। जो सही मार्ग पर चलने वाले अभ्यासी के लिए एक लैम्प का कार्य करती है। ऐसे व्यक्ति का मन और आत्मा दोनों समान रूप से ज्योति और शब्द–धारा के साथ लगकर ऊपर के चेतन और महाचेतन के मंडलों आकर्षित होते जाते हैं, लेकिन उसको इसका कोई ज्ञान नहीं होता। उस समय अभ्यासी को ऐसा लगता है, जैसे कि वह आलौकिक प्रकाश से पैदा होने वाले दिव्य संगीत के परों पर सवार हुए जा रहा है– ठीक उसी प्रकार जैसे कि अलंकार के रूप में कहा जाता है कि जिस प्रकार अग्नि देवता का (सफ़ेद) श्वेत पंखों वाला घोड़ा पैग़ंबर को स्वर्ग में अपने ऊपर ले गया था (अल–मिराज)।

सभी स्थानों में हर समय के आए हुए महात्माओं ने शरीर रूपी इस विचित्र और अनोखे घर का बयान किया है, जो परमात्मा का मंदिर है, जिसमें वह परमपिता, उसका पुत्र और दिव्य व आलौकिक शक्ति विराजमान हैं। जब तक व्यक्ति का यह मानव आत्मा रूपी बेटा किसी सत्पुरुष की अपार कृपा से दीक्षित होकर नाम अर्थात् परमात्मा की उस शक्ति का अनुभव नहीं पाता, जिसका साक्षात्कार होता है। वह बाहरी दुनिया के आकर्षणों में फँसा रहता है और फ़िज़ूलख़र्च बेटे की तरह वह खुद शरीर के इस आवरण से बाहर निकलकर ईश्वर के घर प्रवेश नहीं कर सकता। मूल और अविनाशी सिद्धांत के अनुसार,

> *इसी मिट्टी के शरीर में संदेही नाम के द्वारा हम उस तक पहुँचते हैं, क्योंकि परमात्मा का ज्ञान शरीर से परे होता है।*
>
> – सेंट अगस्टीन

हमारे अंदर जीवन की ज्योति है। शरीर रूपी इस पवित्र घर में यह आकाश दीप दिन–रात बराबर जलता रहता है।

> *जो कोई इस महान ज्योति के प्रकाश के द्वारा ऊपरी मंडलों में आता है, वह भौतिक बंधनों से मुक्त हो जाता है।*
>
> – सेंट अगस्टीन

यही सत्य हमें वास्तविकता की ओर आगे ले जाता है।

जो सत्य को जानता है, वह यह भी जानता है कि परमात्मा की ज्योति कहाँ है, और जिसको इस प्रकाश का ज्ञान है, उसे अविनाशी जीवन का भी ज्ञान है।

– सेंट अगस्टीन

जिस सत्य के एक मात्र ज्ञान से व्यक्ति की (सभी प्रकार के बंधनों, अतीत के पश्चातापों, वर्तमान के भय और मृत्यु की निरंतर घबराहट से) मुक्ति हो जाती है।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 8:32)

शब्द या दैवी शक्ति समस्त सृष्टि को चलाने वाला महान सत्य है। जैसा कि सेंट जॉन कहते हैं :

सभी वस्तुओं की उत्पति उसी एक शब्द से हुई है। सारी सृष्टि की रचना में कोई भी चीज़ उसके बिना नहीं बनी।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 1:2)

गुरु नानक भी कहते हैं :

उतपति परलउ सबदे होवै ।।
सबदे ही फिरि ओपति होवै ।।

– आदि ग्रंथ (माझ म.3, पृ.117)

फिर कहते हैं :

कीता पसाउ एको कवाउ ।।
तिस तेहोए लख दरीआउ ।।

– आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 19, पृ.3)

उपनिषद् में आता है : "एको अहम्– बाहु स्यामः" अर्थात मैं एक ही हूँ, पर अनेक बन जाता हूँ। मुसलमान 'शब्द' को 'कुन–फ़िया' करके बयान करते हैं अर्थात, उसने चाहा और तुरंत सारी क़ायनात (सृष्टि) की रचना हो गई। इस प्रकार जीवन और ज्योति और परमात्मा का संगीत, उसकी साक्षात्कार में आई हुई शक्ति है। यह सर्वशक्तिमान तथा सर्वव्यापक है और सारी (सृष्टि) क़ायनात की (दृश्य और प्रदृश्य) दिखाई देने वाली और न देने वाली सभी चीज़ों उत्पत्ति करके जीवन करते हैं।

सृष्टि का वर्णन करते हुए गुरु नानक कहते हैं :

असंख नाव असंख थाव ।।
अगंम अगंम असंख लोअ ।।
असंख कहि भारु होय ।।

– आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी16, पृ.3)

'असीम' शब्द के द्वारा भी हम उस प्रभु का वर्णन करने में असमर्थ हैं। 'सीमित' या 'असीम' शब्द उस सर्वशक्तिमान के लिए कोई मायने नहीं रखते। वह सभी में विद्यमान है और सबका जीवन आधार है। इस प्रकार वह सृष्टि के कण–कण का ज्ञाता है।

आत्मा के जीवन और अधिक ऊँचाई समझने के लिए व्यक्ति को इस भौतिक जगत की सीमाओं को वास्तव में पार करके दुनिया की नज़रों में कहलाने वाली मौत के द्वार से गुज़रना होता है। तब उसे परे के सूक्ष्म और आसमानी मंडलों में पुनः जन्म लेना होगा।

जो आत्मा में जन्म लेता है वह आत्मा है। जब मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम्हें फिर से जन्म लेना होगा, तो इसमें आश्चर्य नहीं करो।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 3:6-7)

सत्गुरु के द्वारा शिष्य के अंतर इसी जीवन की ज्योति का अनुभव प्राप्त होता है। कर्मचक्र के कारण व्यक्ति के जन्म–मरण का बराबर जो ताँता चलता है इस ज्योति के द्वारा उसकी इन सबसे मुक्ति हो जाती है। कहा जाता है कि सारी सृष्टि 84 लाख योनियों में विभाजित है। इसमें से 9 लाख जल–जीव, 14 लाख वायु–जीव, 27 लाख जीव–जंतु कीड़े–मकोड़े आदि, 30 लाख पेड़, फल–फूल आदि वनस्पति, बाक़ी 9 लाख में सारे पशु, देवी–देवता, भूत–प्रेत, राक्षस आदि की शक्ति तथा मनुष्य आते हैं। जीवात्मा या व्यक्तिगत आत्मा को प्रत्येक जीवन के कर्म–चक्र के अनुसार बलपूर्वक किसी न किसी भौतिक शरीर में बराबर आना–जाना पड़ता है, जब तक कि वह मोक्ष को प्राप्त नहीं कर लेता।

प्रभु के पुत्र के मधुर शब्द (अर्थात, उसके द्वारा प्रत्यक्ष किया संगीत) के साथ अंतर संपर्क स्थापित होने से यहाँ पर वास्तविक और अविनाशी जीवन के आनंद का प्रारंभ

होता है। जो उसको श्रवण करते हैं, वे बाहर से तो एक मरे आदमी की तरह होते हैं पर वास्तव में हमेशा के अनंत जीवन को प्राप्त करते हुए हमारे साथ रहते हैं।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 5:25)

क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि,

उस समय बिना आँखों वालों को दिखने लगता है और बहरों को सुनने की ताक़त मिल जाती है। वहाँ पहुँचने पर लंगड़े हिरन की तरह भागने लगता है, गूंगा गाने लगता है और मनुष्य के हृदय में जीवन देने वाले अमर जल की बाढ़–सी आ जाती है जैसे रेगिस्तान की नदियों में बाढ़ आ गई हो।

– पवित्र बाइबिल (यशायाह 35:5-6)

जिस चीज़ को अपनी आँखों से अब धुंधला देखते हैं फिर वही बहुत स्पष्ट होती जाती है। जिसका अब ज़रा सा हिस्सा दिखता है, फिर वह बहुत गहराई में विस्तार से दिखने लगती है।

– पवित्र बाइबिल (I कुरिंथियों 13:12)

इसी प्रकार गुरु नानक कहते हैं :

अखी बाझहु वेखणा विणु कन्ना सुनणा ।।
पैरा बाझहु चलणा विणु हथा करणा ।।

– आदि ग्रंथ (वार माझ म.2, पृ.139)

आगे फिर कहते हैं :

जीभै बाझहु बोलना इउ जीवत मरणा ।।
नानक हुकमु पछाणि कै तउ खसमै मिलणा ।।

– आदि ग्रंथ (वार माझ म.2, पृ.139)

हमारी इंद्रियाँ हमें इस भौतिक जगत का ही ज्ञान दे सकती हैं वह भी पूरा नहीं। ऐंद्रियक जगत से ऊपर उठने पर यह हमारी सहायता करने में असमर्थ है। "देखते हुए हम केवल देखते हैं, पर अनुभव नहीं करते, सुनते हुए हम केवल

सुनते हैं ज्ञान प्राप्त नहीं करते, हमारे हृदय में न ज्ञान है और न ही अनुभव करने की क्षमता है।" पूर्ण परिवर्तन उस समय आता है, जब व्यक्ति जीवित मृतक के भेद को जानकर अंतर्मुख होना सीखता है। इसलिए यह सद्‌उपदेश है कि भौतिक जगत के मरने का भेद सीखो, ताकि तुम जीवित रहने लग जाओ। (शारीरिक आवरण के सीमित बंधनों से मुक्त होकर जीवित आत्मा भय रहित स्वतंत्र जीवन को पा सके।) इसलिए व्यक्ति को "आत्मा के लिए शरीर रूपी आवरण को उतारना पड़ता है।" गलीली के पैग़ंबर का सदियों पुराना उपदेश इसी बात को समझाता है कि "शरीर को आत्मा से अधिक प्यार न करो।"

जब तक हम 'शरीर में आरामदेह' महसूस करते हैं, हम प्रभु से दूर रहते हैं। और, जितना हम अपने से हटते चले जाते हैं (इंद्रियों का घाट छोड़ता है), उतना ही हम प्रभु के निकट होते चले जाते हैं। सृष्टि की सारी रचना में से किसी की तुलना उसका निर्माण करने वाले ईश्वर से नहीं हो सकती, क्योंकि उसके बिना किसी चीज़ का कोई अस्तित्व नहीं। भौतिक जगत को छोड़कर, जिसे हम मृत्यु कहते हैं, जब आत्मा ऊपर आत्मिक मंडलों में उठती है, ताकि उसे पुनर्जन्म, दूसरा जन्म सा आत्मा को जन्म मिलता है। यहाँ वह अमर जीवन को पाता है, लेकिन यह सब गुरु की शक्ति से संभव है, जिसका उसके सारे शरीर में प्रवाह हो रहा है।

जब तुम्हें दूसरे सभी व्यक्ति त्याग दें, मैं तुम्हे कभी नहीं त्यागूंगा, न ही अंत में मरने दूंगा।

– पवित्र बाइबिल (इब्रानियों 13:15)

जो व्यक्ति शरीर के आवरण को छोड़कर स्थूल से ऊपर सूक्ष्म शरीर में बदलता है जिसे मृत्यु कहते हैं, उसकी मौत पर विजय होती है और दूसरी मौत का उसे डर (भय) नहीं रहता।

– पवित्र बाइबिल (रहस्योद्‌घाटन 2:11)

क्योंकि अगर तुम आत्मा के कहने पर चलते हो, तो तुम कर्म-चक्र के होने वाले जन्म-मरण के निरंतर चलने वाले सिद्धांत से छूट जाते हो।

– पवित्र बाइबिल (गलातियों 5:18)

यह कोरा सिद्धांत नहीं, बल्कि सत्य है, जीवन की वास्तविकता है क्योंकि जीवन की ज्योति हर व्यक्ति में जन्म से साथ आती है, उसे उसी समय सर्वव्यापक शब्द और, "स्वर्ग के राज्य के सूक्ष्म भेदों" [– पवित्र बाइबिल (मत्ती 13:11)] को पाने का आदेश दिया जाता है।

परे के इस विज्ञान में विचार और तर्क का कोई स्थान नहीं। वास्तविक अनुभव प्राप्त करने से स्वयं ही विश्वास और श्रद्धा पैदा हो जाती है। इस ज्योति के पिता परमात्मा स्वयं ज्योति स्वरूप हैं। वे महान ज्योति है वे 'नूरन–अल्ला–नूर' स्वयं हर मनुष्य के अंदर स्थित आत्मा में प्रकाशवान हैं। इस सर्वव्यापी और महान ज्योति की आत्मा एक चिंगारी के समान है, यूँ कहें कि चेतनता के सागर में केवल एक बूंद है। शरीर के अनेकों आवरणों को पहनकर भी आत्मा अपना अलग (पृथक्) व्यक्तित्व रखती हो। यद्यपि यह 'नर–नारायणी देह' (आत्मा) हर व्यक्ति के शरीर में है, लेकिन हैरानगी (आश्चर्य) की बात है कि इतने पास होते हुए भी एक को दूसरे का ज्ञान नहीं।

क्योंकि व्यक्ति बाहरी जगत के आकर्षण और इंद्रियों के घाट पर इतना जकड़ा पड़ा है कि उसने भ्रम से उसी को हमेशा रहने का स्थान समझ रखा है। महापुरुष हमको इसी भ्रम से छुड़ाने आते हैं। वे हमें अपने असली घर का केवल ज्ञान ही नहीं देते, बल्कि ईसा के समान ज़ोरदार ढंग से यह कहते हैं कि,

मैं स्वर्ग के राज्य की कुंजियाँ तुम्हें सौंप दूँगा।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 16:9)

गुरु रामदास जी कहते हैं :

गुरु कुंजी पाहू निवलु मनु कोठा तनु छति ।।
नानक गुर कबनु ताकु न उघड़े अवर न कुंजी हथि ।।

– आदि ग्रंथ (सारंग की वार म.4, पृ.1237)

लेकिन हमसे कितनों ने उनके गंभीर और हट आश्वासनों पर विश्वास जमाया है और हमसे कितने उनके राज्य की चाबियाँ लेने के लिए तैयार हैं? फिर उससे भी ऊपर कितने व्यक्ति हैं, जो आँखों के पीछे उस वज्र–कपाट को खोलना चाहते हैं। कहना पड़ेगा कि बहुत कम उस 'शब्द' के सुनने वाले हैं। इसके विषय में क्राइस्ट ने कहा है कि,

जो मेरे 'शब्द' को सुनता है, वह मृत्यु पर विजय पाकर हमेशा के अमर जीवन को पाता है।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 5:24)

हम ईश्वर से दिन–रात यह प्रार्थना करते हैं कि हमें असत्य से सत्य, अंधकार से प्रकाश और मृत्यु से अमर जीवन की ओर ले चलें। लेकिन इस प्रार्थना के करने पर भी हम उस ओर चल नहीं पाते। यह एक अद्‌भुत विरोधाभास है। फ़िनिक्स की लिखी सारी पहेलियों में भी इतना बड़ा विराधोभास नहीं था। जो थैयबीयंस को थैयबी के राक्षस से था, या यक्ष ने जीवन का दृश्य रखा यक्ष ठंडे पानी की देखभाल करने वाला था। उसने पांडवों के सामने एक प्रश्न रखा। पांडवों में से हर एक प्यास बुझाने के लिए उसके पास गया, लेकिन उसकी बात को युधिष्ठिर के सिवाय कोई सुलझा नहीं सका। उनकी इस अयोग्यता के लिए उन्हें पत्थर बना दिया गया। यह सब विरोधाभास भी इससे अधिक प्रभावशाली नहीं। क्या हम कठोर जीवन नहीं बिता रहे हैं, जैसा कि मौत में होता है। उस परिस्थिति में हम अनेक बेजान वस्तुओं की तरह होते हैं और किसी शांति के राजकुमार (संत) की प्रतीक्षा करते हैं कि वह हमें फिर से नया अनंत जीवन दे जैसा जीवन 'फ़ीनिक्स' नामक अमर पक्षी को जीतकर दिया गया था या जैसा पुरातन काल के यक्ष पर विजयी होने से पांडवों को मिला था। जो हमारे जीवन पर कठोर नियंत्रण रखे, ताकि हम कहानी में कही गई सोने का अंडा देने वाली बत्तख से ललचा न जाएँ और किसी भी तरह के पुरस्कार की अभिलाषा न रखकर जेसन के समान उसके अत्याचार और कठोर व्यवहार से बच निकलें। यह हमारे जीवन की कठिन पहेली है, जिसको हमें सुलझाना है इसको सुलझाए बिना हमारा यहाँ का छोटा सा (अल्प) अस्तित्व और भी सीमित हो जाता है और उसकी प्रगति रुक जाती है।

हमारे में अधिकांश सामान्यता पशुओं के समान जीवन व्यतीत करते हैं और अंधों के समान बिना देखे–भाले जीवन बिताते हैं। हम अपनी भावनाओं और मन की बनाई अपनी दुनिया से कभी ऊपर नहीं उठते। इस प्रकार हम अपने चारों ओर के भौतिक वातावरण से बड़ी मज़बूती से जकड़े पड़े हैं। ऊपर की दिव्य और आलौकिक ज्योति हममें से बहुतों के लिए मनुष्य की मनघड़ंत विचारधारा के अलावा और कुछ भी नहीं।

तुलसी साहब कहते हैं :

है घट में सूझत नहीं लानत ऐसी जिंद,
तुलसी या संसार को भया मोतियाबिंद ।

कबीर साहिब कहते हैं :

सब जग अंधा,
इक दो होएं तो उसे समझाऊँ, जित देखु तित अंधा हो ।

इसी प्रकार गुरु नानक कहते हैं :
अंतरि देउ न जानै अंधु ।।

– आदि ग्रंथ (वाणी भगतां कबीर, पृ.1160)

आगे फिर कहते हैं :

अंधे एहि न आखीअनि जिन मुखि लोइण नाहि ।।
अंधे सेई नानका खसमहु घुथे जाहि ।।

– आदि ग्रंथ (रामकली वार म.3, पृ.954)

कहै नानकु एहि नेत्र अंध से सतिगुरि मिलिऐ दिब दृसटि होई ।।

– आदि ग्रंथ (रामकली म.3, पृ.922)

ऐसा क्यों है कि हम अपने भरसक और उचित प्रयत्न करने पर भी उसको देख नहीं पाते?

नानक से अंखड़ीआँ बिअंनि जिनी डिसंदो मा पिरी ।।

– आदि ग्रंथ (वडहंस म.5, पृ.577)

'शब्द' या 'नाम' के साथ जुड़ने से ही हमें परमात्मा का वास्तविक ज्ञान होता है। इसके जानने के बाद और कुछ जानने को नहीं बचता। 'जप जी साहिब' में उस महान गुरु ने असंख्य और अमूल्य भंडारों का वर्णन किया है जो व्यक्ति को 'नाम' के ध्याने से अपने आप मिल जाता है जब उस दिव्य पावन शब्द का उसके अंतर में ऊपर के मंडलों से अपने आप प्रवाह चलने लगता है। उसको पाकर व्यक्ति सर्वगुण संपन्न हो जाता है।

गुरु नानक का कहना है कि,

सुणिये सिध पीर सुरिनाथ, सुणिये धरती धवल आकास ।।
सुणिये दीप लाये पाताल, सुणिये पोहि न सके काल ।।
नानक भगता सदा विगास, सुणिये दुख पाप के नास ।।

सुणिये ईसरू बरमा इंदू, सुणिये मुखि सालाहण मुंद ।।
सुणिये जागे जुगति तनि भेद, सुणिये सासत सिमृति वेद ।।
नानक भगता सदा विगास, सुणिये दुख पाप का नास ।।
सुणिये संत संतोष गिआनु, सुणिये अठसठ का इसनान ।।
सुणिये पढ़ पढ़ पावहि मान, सुणिये लागे सहज धियानु ।।
नानक भगता सदा विगासु, सुणिये दुख पाप का नासु ।।
सुणिये सरा गुणा के गाह, सुणिये संख पीर पातिशाह ।।
सुणिये अंधे पावहि राहु, सुणिये हाथ होवे असगाहु ।।
नानक भगता सदा विगासु, सुणिये दुख पाप का नास ।।

– आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 8-9, पृ.2-3)

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि इस संसार में और इससे ऊपर परे की दुनिया में सफलता का रहस्य इस बात में है कि हम अपनी आत्मा को अंतर में महा–आत्मा या 'शब्द–धारा' के साथ किस प्रकार मिलाएँ। यह 'शब्द' सबका आदि और अंत है। गुरु अर्जन इसलिए बार–बार कहते हैं कि मनुष्य का जन्म बड़े भागों से मिला है। उसमें रहकर उसका पूरा फ़ायदा उठाओ।

लख चउरासीह जोनि सबाई ।।
माणस कउ प्रभि दीई वडिआई ।।
यसु पउड़ी ते जो नर चूकै सो आये जाये दुखु पायदा ।।

– आदि ग्रंथ (मारू म.5, पृ.1075)

कितने दुख की बात है कि दुनिया की सारी भौतिक चीज़ों को पा लेने वाला व्यक्ति अपनी आत्मा को खो बैठता है। लाभ कमाने की बजाय वह घाटे का सौदा कर लेता है। जिस घाटे को सहन और पूरा करना बहुत कठिन है, इस घाटे के कारण उसको सदियों तक भुगतना पड़ता है, जब तक कि पुनः उसे मानव देह न मिले। एक बार आया सुअवसर यदि हाथों से निकल जाए, तो अब तक की कमाई हुई सारी पूँजी व्यर्थ चली जाती है और मनुष्य इस जीवन रूपी भवसागर की थपेड़ों में निर्बल और बेसहारा सा हुआ गोते खाता है। जीवन की सबसे ऊपर की सीढ़ी पर पहुँचने के बाद नीचे गिर जाना वास्तव में बड़ी भारी गिरावट है।

m

3.

पूर्णता में जीवन

यह भूमि अनेकों समान और विरोधी तत्त्वों से भरपूर लड़ाई–झगड़ों का युद्ध–स्थल है। जहाँ यद्यपि जीवन के बहुत सारे पहलुओं को अनेकों प्रकार से विभिन्न रंग–रूप में प्रकट किया जाता है, लेकिन फिर भी इस महान सृष्टि की असीमित रचना का वह केवल एक छोटा सा अंश ही है।

गुरु नानक कहते हैं :

> धरती होरु परै होरु होरु ।।
> तिस ते भारु तलै कवण जोरु ।।
> जीअ जाति रंगा के नाव ।।
> सभना लिखिआ वुड़ी कलाम ।।
> एहि लेखा लिखि जाणै कोई ।।
> लेखा लिखिआ केता होई ।।
>
> – आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 16, पृ.3)

सारी अपूर्णताओं के रहते हुए भी आध्यात्मिक क्रम में यह भौतिक जगत एक बहुत ज़रूरी (लाभदायक) कार्य को पूरा करता है। उसी तरह से जैसे बिजली पैदा करने वाले कारखाने में, मशीन में लगा एक छोटा सा कील कार्य को पूरा करता है। इस सृष्टि की रचना परमात्मा ने अपने नमूने पर की है। इसमें कहीं पर भी कोई चीज़ व्यर्थ या ग़लत नहीं। यह संसार एक ऐसा स्थान है, जहाँ आत्मा की शुद्धि हो सकती है या यह कहें कि यह अनुचित से उचित की ओर ले जाने वाला घर है। इसी स्थान पर मृत्यु के बाद आत्मा की शुद्धि कराने के लिए कई प्रकार के दंड मिलते हैं। यहाँ ग़लत से सही दिशा पर लाने की क्रिया है। यहाँ अनुभवों के द्वारा आत्मा की सफ़ाई की जाती है। यह स्थूल और आध्यात्मिक मंडल के बीच में है। संसार में काम करने वाली सत्ता बहुत बड़ा कार्य करती है। यह 'मूसा' के कहे सिद्धांत, 'जैसा करोगे वैसा भरोगे' में विश्वास रखती है और न्याय करने के लिए तीसरी श्रेणी के सभी तरीक़ों पूरी तरह पालन करती

है। व्यक्ति के कर्मों के अनुसार दंड देने में, इन तरीक़ों का सख़्ती (कठोरता) से पालन होता है। इसमें किसी तरह रहम और दया का व्यवहार नहीं किया जाता। जिससे वह व्यक्ति इन सज़ाओं की गंभीरता को समझे और धीरे–धीरे संसार की माया से हटकर परमात्मा की ओर जाए। इस प्रकार भूमि के स्थूल मंडल पर जीवन बहुत भयानक है तथा भय और अहंकार से भरा है। चिरकाल से उसमें हम प्रभु की औलाद संसार के आकर्षणों में खोकर चिरकाल से यहाँ पड़े हैं।

जीवित परमाणुओं की प्रकृति में परिवर्तन अनिवार्य है और सभी उस लक्ष्य की ओर अग्रसर होकर उससे समन्वय होना चाहते हैं क्योंकि वास्तविक आनंद उस दैवी–शक्ति और मूल तत्त्व के साथ मिलने में है, जो उस समय तक संभव नहीं जब तक हम सृष्टि के बंधनों से स्वतंत्र होकर पूर्णतया उज्ज्वल नहीं हो जाते। हमें न यह मालूम है कि, 'हम क्या हैं' और न ही यह कि, 'हम क्या बन रहे हैं' क्योंकि जो कुछ हम हैं, उसे देखते नहीं और जो कुछ हम देखते हैं वह इसकी केवल छाया (प्रतिबिंब) है। हमारी अंतरात्मा प्रभु का स्वरूप है, इसलिए यह तब तक चैन में नहीं आती, जब तक उसका पिता परमात्मा उसके अंतर प्रकट नहीं होता। प्लोटिनस का कहना है कि वास्तव में धर्म का अनुभव उस समय होता है, जब आत्मा जो अब मन के साथ जुड़कर निचले मंडलों में घूम रही है इंद्रियों का घाट छोड़े और फिर अपने निजघर (प्रभु) में निवास करना शुरू कर दे। अगर हमें यह समझ आ जाए कि आत्मा को मन तथा इंद्रियों के बंधनों से किस प्रकार आज़ाद करना है, तो यह धर्म का अनुभव हमें भी मिल सकता है।

आत्म–अनुभव तथा प्रभु–अनुभव जीवन के सबसे ऊँचे लक्ष्यों में से है। आत्मा का अनुभव ही परमात्मा के अनुभव की ओर ले जाता है। यह पुरातन से पुरातन और सनातन से सनातन सिद्धांत है कि जब तक अपने आपको नहीं जानते धर्म का सही अर्थ समझ में नहीं आता। सबसे पहले ग्रीस ने तथा उसके बाद रोम के धर्म अनुयायियों ने अपनी–अपनी भाषा और अपने–अपने ढंग से इसी तथ्य पर ज़ोर डाला है कि सबसे पहले अपनी आत्म–ज्ञान अर्थात अपने आपका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। हिंदू ऋषि–मुनियों को आत्म–ज्ञान और मुसलमानों को 'खुद–शनासी' सबसे पहले प्रारंभ होता है। उसके बाद परमात्मा या 'रब्ब–उल–आलमीन' का अनुभव मिल सकता है। इसी को 'ब्रह्म–ज्ञान' या 'खुदा–शनासी' कहते हैं।

आत्मा को अनुभव पाने के लिए पहले अपने मन और तन को भौतिक आकर्षणों के प्रबल प्रवाह से मुक्त करवाना होगा। इसके लिए बाहर भटकती हुई अपनी सुरत को मन इंद्रियों से आज़ाद करके अंतर्मुख करना होगा। ऐसा करने से बाहर इंद्रिय जगत से आत्मा अंतर के जगत में लीन होने लगती है। जिससे आत्मा स्थूल जगत से हटकर परे की दुनिया की सैर करती है, जिसको 'परा–विद्या' कहते हैं। वास्तविक जीवन और वास्तविकता की पहचान केवल मृत्यु की समान अवस्था में होती है। यह एक ऐसी अवस्था है, जिसमें इंद्रियाँ शरीर को छोड़कर आँखों के पीछे चेतन जगत में अंतर्मुख होती है। जीवन का यह एक सजीव सिद्धांत है, यद्यपि यह इंद्रियों आदि से अलग रहता है।

आमतौर पर हम व्यावहारिक जीवन में अनेकों आकर्षणों से लालायित होते हैं– जैसे कि सुंदरता, आँखों, कानों तथा अन्य इंद्रियों का आकर्षण। हम इस विभिन्न प्रकार की मोह–माया के आकर्षण तथा इच्छाओं में निरंतर बहते रहते हैं। यह हमारे हृदय की भावनाओं से प्रेरित होती हैं और मन के अंदर गुप्त रूप में विद्यमान है। सभी प्रकार की पसंद या नापसंद, अभिमान व पूर्व विचार, प्रेम व घृणा और ऐसी अनेक बाते हमारे चेतन जगत में अपने–अपने व्यक्तिगत ढंग से चेतन जगत में प्रवेश करती रहती हैं, जिससे हमारी शक्ति का विनाश होता है। इससे हम अंतिम लक्ष्य, जो जीवन का उद्देश्य है और आत्मा का अनुभव है, उससे काफ़ी दूर रह जाते हैं। जीवन के उद्देश्य के प्रति हमारी यह अज्ञानता ही हमारे गंभीर दुख का कारण होती है, प्रायः जिसें हम सभी शिकार होते हैं। यही हमारा तथा हमारी आत्मा का भौतिक जगत में बंधन है। इसी के कारण हमें अनेक पापों का कष्ट उठाना पड़ता है। यह सब होने पर भी हमारे अंतर एक महान सत्ता विद्यमान है, जो आत्मा को इन सब बंधनों से आज़ाद करवाती है। इसलिए हमें जीवन के इन सब नीरस बंधनों वाले नाटक से अपने आपको अलग करना है। तभी हम उस ख़ामोशी के स्थान को अंतर में पा सकते हैं, जहाँ सब बंधनों से आज़ाद। वह सर्वव्यापी सत्ता इस शरीर रूपी हरि–मंदिर में विद्यमान है। इस प्रकार यह सारी वर्तमान क्रिया उलटकर दूसरी दिशा में चलती है। इमर्सन ने इस क्रिया को अंतर्मुख होना कहा है। जिसको राष्ट्रपति ट्रूमॅन ने कहा है कि दिमाग़ के एक छेद में प्रवेश करो, क्योंकि यही वह दिमाग़ का छेद था, जिसमें दफ़्तर के सारे कामों के बोझ से घबरा जाने पर मानसिक शांति व आराम पाने के लिए, वह प्रवेश किया करता था। वेदों में इसको

'ब्रह्म–केंद्र' कहा है अर्थात वह बिंदु, जहाँ ब्रह्म (परमात्मा) के साथ संपर्क जुड़ता है।

सेंट मैथ्यू ने इसी को बड़े प्रभावशाली ढंग से कहा है कि,

खटखटाओ, और तुम्हें वह ज़रूर मिलेगा।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 7:7)

इससे यह मालूम होता है कि शरीर के अंदर एक ऐसा द्वार है जो परे के मंडलों में ले जाकर प्रभु के राज्य से प्रवेश करवाता है। इस अंतर के मार्ग के विषय में कहा गया है कि,

सीधा द्वार है, जिसका तंग रास्ता है, जो जीवन देता है;
पर थोड़े से लोग ही इसे पा सकते हैं।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 14:7)

इस रास्ते को पाने और अनुभव करने के बाद व्यक्ति का इस पर विश्वास जमता है। उससे अपरिचित रहने पर, उसे इसकी वास्तविकता का बिल्कुल पता नहीं चलता। हमारी बुद्धि सीमित है। इसलिए उससे प्राप्त ज्ञान भी सीमित ही होगा। धर्म–ग्रंथ इस का वर्णन ज़रूर करते है, लेकिन हमें इसका अनुभव देने में असमर्थ है। तर्क के द्वारा प्राप्त ज्ञान बुद्धि से निकाले सिद्धांतों पर निर्भर है। इन पर हम पूर्ण रूप से अपने ज्ञान को टिका नहीं सकते। जब आत्मा का संपर्क उस अविनाशी 'शब्द' के साथ लगता है, तभी निश्चिंतता संभव है। हॅनरी बर्गसन नामक एक दार्शनिक का कहना है कि "सत्य का ज्ञान करने वाले सबसे छोटा, तेज़ तथा निश्चित मार्ग है। यह उन परे के मंडलों में, जिनका अभी ज्ञान नहीं, प्रवेश करवाता है।" बुद्धि और इंद्रिय ज्ञान के द्वारा और कुछ पहली जानकारी से हम कुछ हद तक वास्तविकता को समझ सकते हैं, लेकिन जब तक हमारी अंतर की आँख न खुले और हम स्वयं उसका अनुभव न करें, उस बाहरी ज्ञान पर विश्वास नहीं आता। इस अंतर–ज्ञान तथा अंतर क्रिया पर बहुत थोड़े से लोगों का मालूम है। गुरु नानक ने बड़े ज़ोरदार शब्दों में कहा है :

अंधे एहि न आखीअनि जिन मुखि लोइण नाहि ।।
अंधे सेई नानका खसमहु घुथे जाहि ।।

– आदि ग्रंथ (रामकली की वार म.3, पृ.954)

अंतर के उस सीधे द्वार और तंग रास्ते पर जीवन अमर–जीवन की ओर ले जाता है। आत्मा का जीवन इस स्थूल जीवन से भिन्न है। इस समय हमारा जीवन निचले स्तर का है। इसलिए हमें अपने मन को बाहरमुखी आकर्षणों से पूरी तरह हटाना है, क्योंकि इस समय हमारी आत्मा मन से संचालित है। आत्मा को ऊपरी मंडलों में ले जाने के लिए पहले मन को नियमित करना होगा। तभी यह बाहर फैली आत्मा इंद्रियों का घाट छोड़कर आँखों के पीछे दो भ्रू–मध्य पर आएगी, जो उसका अपना स्थान है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि हमें अपने वर्तमान जीवन को हृदय केंद्र से हटाकर आँखों के केंद्र पर लाना होगा जिसे 'तीसरा–तिल' या 'नुक़्ता–ए–सवैदा' कहते हैं। यहाँ आकर हमें उस एक आँख को बनाना है, जिसके लिए ईसा मसीह ने कहा है कि,

यदि तुम्हारी एक आँख बन जाए, तो तुम्हारा सारा शरीर ज्योति से भरपूर हो जाएगा।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 6:22)

इस 'एक आँख' या 'तीसरी आँख' का वर्णन सब प्राचीन ऋषियों ने अनेक प्रकार से किया है जैसे शिव–नेत्र, दिव्य–चक्षु, चश्म–ए–बातिन आदि। इसके द्वारा हमें परमात्मा के राज्य की प्राप्ति होती है, जिसको हम अभी तक पूरी तरह भूले हुए है। यहाँ पहुँचकर हमें अंतर्मुख होना होता है। बाहर के सारे ख़्यालों को छोड़कर पूरे ध्यान से एकाग्रचित्त होकर इस द्वार को बार–बार खटखटाना होता है, ताकि अंतर में रास्ता मिले और हम सूक्ष्म जगत में प्रवेश कर सकें। इसीलिए संत कहते हैं कि यह तुम्हारा जागने का समय है, जागकर परमात्मा की प्यार भरी याद करो। परंतु यह कैसे करें? हमने अभी तक उसे देखा नहीं, हम न ज़्यादा देर ध्यान लगा सकते हैं और न ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि वह (प्रभु) निराकार है उसका कोई आकार नहीं। हमारी इस निर्बलता के लिए संतों का आदेश हमारे सम्मुख है कि उस निराकार परमात्मा का ज्ञान तुम किसी सत्पुरुष से पूछो, जो प्रभु से हर समय जुड़ा है और जिसमें परमात्मा का साक्षात्कार हो रहा है। वह सत्पुरुष क्या कहता है? कि तुम अपनी सुरत को आँखों के मध्य में जमाओ जहाँ शिव–नेत्र है, जो शिव के रहने का स्थान है। वहाँ जैसे–जैसे आत्मा का अनुभव मिलता जाएगा, सब ज्ञान समय के अनुसार स्वयं मिलता चला जाएगा।

संतों का कहना है कि सारा संसार तेज़ चलने वाली परछाइयों कर पीछा करता हुआ अंधों के समान टटोलता फिर रहा है। यह छाया हमेशा अपना रूप

बदलती रहती है और पास पहुँचने पर हवा में लोप हो जाती है, जबकि सारी खुशी और आनंद का स्त्रोत और मंज़र इस शरीर में आत्मा के स्थान पर आँखों के मध्य में जागृत अवस्था में पड़ा है, जिसका अभी तक कोई प्रयोग नहीं हुआ। इस केंद्र का ज्ञान होने पर महान चेतन प्रभु का उन ऊपरी मंडलों के साथ संपर्क स्थापित होता है। यह स्थान मनुष्य के दिमाग़ से परे के स्थान हैं। इंद्रियों में बंधे होने के कारण हमारा ज्ञान इंद्रिय ज्ञान पर आधारित और सीमित है। इंद्रियों के बिना भी आत्मा पूर्ण है, क्योंकि इसका ज्ञान और अनुभव इंद्रियों से हटने पर उस व्यक्ति को मिलता है, सांसारिक ज्ञान की तरह यह बाहरी तत्त्वों की सहायता से अप्रत्यक्ष रूप में नहीं मिलता। इस संपर्क को प्राप्त करने के बाद व्यक्ति एक एक क़दम आगे बढ़ता हुआ, प्रभु के असली घर में प्रवेश करता है। यही पूर्णता में जीवन है। मनुष्य को तीन वरदान प्राप्त है, क्योंकि उसमें यह शक्ति दी गई है जो सूक्ष्म तथा कारण मंडलों में प्रवेश करके ब्रह्म और पारब्रह्म तक पहुँचती है, जहाँ दुनिया के परिवर्तनशील, बनावटी और धोखा देने वाली वस्तुओं से हटकर हमेशा का आनंद तथा खुशी प्राप्त होती है। लेकिन जब तक व्यक्ति अपनी आत्मा को संसार से अपने आपसे अर्थात् अपने शरीर, मन तथा बुद्धि से अलग नहीं कर लेता, वह परमात्मा के निकट नहीं पहुँच सकता।

जब बाहरी व्यक्ति मरता है अर्थात जब मनुष्य जीते–जी बाहर से मरता है तब आंतरिक व्यक्ति अर्थात आत्मा पुनः जीवित होती है। उस समय रूप परिवर्तनशील पर्वत की भ्रम से भरी ऊँचाइयों का पता चलता है। इस समय व्यक्ति शरीर तथा उसके प्रभावों से स्वतंत्र होकर विशुद्ध जीवित आत्मा बनता है। ऐसी अवस्था होने पर वह इस योग्य होता है कि पहले आए हुए संतों, ईसा, इलिजाह तथा पैग़ंबरों से अंदर मिल सके।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 17:3)

अंत समय वह परमात्मा द्वारा दी गई दावत में शामिल होता है।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 26:2; मरकुस 14:12)

इस स्थान पर परमात्मा अपने शिष्य की प्रतीक्षा करता है। बाइबिल में आता है :

होशियार रहो! मैं दरवाज़े पर खड़ा होकर आवाज़ करता हूँ। यदि कोई आदमी मेरी आवाज़ को सुनकर दरवाज़ा खोल देता है, मैं उसके अंतर में समा जाता हूँ और मैं उसके साथ; और वह मेरे साथ भोजन लेता है।

– पवित्र बाइबिल (रहस्योद्घाटन 3:20)

सेंट जॉन ने जो यह अनुभव हमको बतलाया है, यह उसको उस समय प्राप्त हुआ था, जब उसने आत्मा में प्रवेश किया और वह बतलाते हैं कि परमात्मा उस समय इस प्रकार से आए, जैसे रात को चोर आता है। यह इशारा आत्मा की ख़ामोशी का दिया गया है। फ़ारस के एक प्रसिद्ध संत हाफ़िज़ का भी कहना है :

मुर्शिद रात को हाथ में चिराग़ लिए आता है।

पैग़ंबर मुहम्मद का कहना है :

प्रभु का रास्ता बाल से पतला और उस्तरे से ज़्यादा तेज़ धार वाला है।

गुरु नानक ने इसी को 'खन्डे–दी–धार' कहकर कहा है, जो बाल से भी ज़्यादा पतली है और जहाँ व्यक्ति को गुज़रने के लिए मृत्यु के समान अनुभव प्राप्त होता है।

इसी का वर्णन करते हुए सेंट प्लूटार्क ने कहा है :

मृत्यु के समय उस सारी क्रिया से गुज़रते समय वही अनुभव होता है जो अनुभव किसी पूर्ण संत की शरण में आकर दीक्षा लेने वाले शिष्यों को मिलता है।

लेकिन जीवित रहते हुए हममें से कितने मरने को तैयार होते हैं? हम सभी व्यक्ति नाशवान होने के कारण मृत्यु से भयभीत हैं। ऐसा क्यों है? विशेषतया जब हम सभी जानते हैं, बल्कि भली प्रकार जानते हैं कि जो कोई चीज़ सृष्टि की रचना में बनी है, उसका नाश होना ज़रूरी है। इसका कारण ढूँढना दूर नहीं। पहली बात हमें अपनी इच्छा से जीते–जी मरना नहीं आता। दूसरी बात कि हमें ज्ञान नहीं कि मरने के बाद क्या होता है? हम मरकर कहाँ जाते है? मृत्यु जाल से परे क्या है? यही कारण है कि हमें मृत्यु से भय लगता है। इतना ही नहीं मौत के केवल विचार करने से ही मृत्यु के समान गंभीर अवस्था को पा जाते हैं।

मरणै ते जगतु डरै जीविया लोड़े सब कोइ ।।
गुरपरसादी जीवितु मरै हुक्मै बुझै सोइ ।।
नानक ऐसी मरनी जो मरै ता सद जीवण होइ ।।

– आदि ग्रंथ (बिहागड़ा की वार म.5, पृ.555)

आख़िर मृत्यु कोई हव्वा नहीं। "आध्यात्मिक दर्शन शास्त्र कितनी आकर्षक है! यह सख़्त और कठिन नहीं जैसा कि नादान लोगों ने इसका अनुमान लगा रखा है, बल्कि यह अपोलो की बाँसुरी के समान मधुर है, अकृत की हमेशा रहने वाली दावत के समान मीठी है।" यह वास्तव में मृत्य से परे जीवन के कई नए मंडलों तथा दृष्यों को खोलती है। इतना ही नहीं, चिता व अर्थी की लपटों के, जो शरीर का नाश करती है, परे के नए आयाम खोलती है। "तुम मिट्टी हो और तुम्हें मिट्टी में ही मिलना है"– यह आत्मा के लिए नहीं कहा गया था। जीवन का सिद्धांत हमारे में या किसी और जीवित वस्तु में कभी समाप्त नहीं होता। वह तो केवल अपने रूप का परिवर्तन करता है। जिसको हम भ्रमवश 'मृत्यु' कह देते हैं और ग़लती से नाशवान समझ बैठते हैं।

प्रकृति में मृत्यु जीवन प्रदान करती है और जीवन मृत्यु को प्रकाशित करता है। यह सर्वव्यापी सिद्धांत सभी जगहों तथा सृष्टि की सब चीज़ों पर लागू होता है। सब समझदार लोगों का कहना है कि सत्य का ज्ञान आत्मा में प्रवेश करने से आता है। जैसे ही आत्मा, बंधन की कड़ियों को इच्छानुसार तोड़कर ऊपर आती है, तब आत्मा पर तेज़ ज्योति का प्रकाश होता है। यह प्रकाश परे की दुनिया से आता और व्यक्ति को प्रभु का बहुत ऊँचा अवतार व पैग़ंबर बना देता है। यह इस आत्मा में प्रवेश होने वाले पर्वत पर है कि व्यक्ति को सब अंतर की बातों का ज्ञान होता है, जहाँ वह स्वर्ग तथा पृथ्वी के मिलाप को देखता है।

इस स्थान पर वह देखता है कि अंधकार प्रकाशवान हो जाता है और उजाड़ जगह पर फल लगते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को वास्तव में किसी दिन मरना है– चाहे पक्षी, जानवर, आदमी, अमीर व ग़रीब, स्वस्थ व बीमार, जवान व बूढ़ा कोई भी हो। जो स्थूल शरीर का आवरण आत्मा ने चढ़ा रखा है, वह किसी भी दिन उसने उतारना है। मृत्यु ही केवल यथार्थ तथा निश्चित है, जबकि इस संसार में जीवन अनिश्चित है। हम शायद ही कभी उस लंबे सफ़र के बारे में सोचते हैं, जो हमारे अंदर में हैं। हम दूसरों की मृत्यु पर शोक जाहिर करते हैं, कितने ही दिनों तक बाद में भी उनका शोक मनाते रहते हैं। लेकिन कभी भी

इतने समझदार बनने की कोशिश नहीं करते कि अपनी मौत का सोचें और अपने को उस अंतिम सफ़र के लिए तैयार करें, जो जीवन के अंत में अपरिचित और परे के मंडलों में ले जाता है।

इससे पहले कि मौत की स्थिति के सैद्धांतिक ज्ञान का विश्लेषण उसी प्रकार से वर्णन किया जाए यह आवश्यक हो जाता है कि हम यह जाने कि हम कौन है? क्या है? कहाँ से आए है? कहाँ जाना है? और इन सबसे ज़्यादा जीवन का क्या अर्थ और उद्देश्य है?

मनुष्य इस समय जैसे बना है उसकी बनावट में शरीर, मन तथा बुद्धि तीनों का समन्वय करके आत्मा को कार्य–सत्ता के द्वारा चलाया गया है। इस तरह का मनुष्य का आकार और वातावरण चिरकाल से चला आ रहा है। हमारी सुरत हमेशा शरीर के ऊपर तथा नीचे के नौ सुराख़ों की तरफ़ चलती फिरती है। यह नौ सुराख़– आँख, कान, नासिका, मुँह और दो नीचे। हम अपनी इच्छा से ऐसा नहीं करना चाहते, परंतु यह हमारी पुरानी आदत बन जाती है। हम शरीर रूपी जिस घर में रहते हैं, उसके अभी पूरे मालिक नहीं बन पाए। हमारा मन और सारी इंद्रियाँ हमें हमेशा सांसारिक भोगों–रसों में लगातार खींचे रखती हैं।

सुरत का मन तथा भौतिक पदार्थों में यह संबंध बराबर बना रहता है। इसी के कारण हम नीचे खिंचे रहते हैं। इसने हमारे रूप को भी इतना ख़राब कर दिया है कि इसको पहचानना भी कठिन है। अब यह हालत है कि हम अपने आपको पहचानने में असमर्थ हैं। हम अपने सीमित पदार्थों तथा सीमित वातावरण में इतने मिल चुके हैं कि हम उससे अलग नहीं हो सकते। इसके अलावा किसी बात को नहीं जानते। जब तक आत्मा अपने आपसे अलग होकर अपने उस आवरण को उतार नहीं फेंकती, जिसमें यह की ढकी पड़ी है। यह निरोल, चेतन पवित्र और सादा रूप को नहीं पा सकती और न ही इन अनगिनित सीमित अनुबन्धों से अपना संपर्क हटा सकती है। ये अनगिनित अनुबन्ध हैं :

(1) मन या चित्त जिनमें अनेकों विचार संचित रहते हैं, मन सोचता रहता है, बुद्धि चलती रहती है और अहंकार अपनी चीज़ों का अभिमान करता है। (2) आवरण जो शरीर को ढके रहते हैं– स्थूल या अनन्मय, सूक्ष्म–प्राणमय, कारण–विज्ञानमय और आनंदमय, (3) जन्मजात और प्राकृतिक औचित्य के तत्त्व अर्थात् सत्य, प्रसन्नचित व्याकुलता अर्थात् राजस और अज्ञानता के कारण आलस्य अर्थात तामस (4) पाँच तत्त्व भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश

जिनसे सारी भौतिक रचना का निर्माण हुआ है, और (5) पच्चीस मिलावट से बनी विभिन्न अनुपात की प्रकृतियों जिनसे भौतिक शरीर व मिट्टी अलग–अलग रूप–रंग आकार आदि कर्म चक्र के कारण बनती है। इन अनेकों प्रकार के जालों में फँसी आत्मा अपने सही रूप को जान नहीं पाती, न हीं अपने आत्मिक तथा यर्थाथ घर और अपने संबंधों को जान पाती है, जिन सबका ज्ञान तब होता है जब यह अपने आपको जानती है, अनुभव करती है तथा आत्मा को निरोल चेतन रूप में प्रकाशवान देखती है।

अब हम देखें कि कुछ एक अंग्रेज़ दार्शनिकों का इस संबंध में क्या कहना है :

मनुष्य अपने में एक छोटा सा संसार है जो बड़ी होशिया. री से भौतिक तत्त्वों तथा देवी आत्मा को मिलाने से बना है। उसके ईश्वरीय गुण उसकी गिरावट के कारण कम होते गए। इसलिए उसे लगातार देवी नाराज़गियों, जैसे लड़ाई, प्लेग और तूफ़ान आदि का सामना करना पड़ता है। फिर भी उसे कुछ आनंद देने वाली ख़ुशी प्राप्त हो सकती है अगर वह इस संसार को अपने भविष्य की तैयारी का स्थान मानकर आत्मा के अनुसार अपने शरीर को ढाल ले।

– जे डॉन

इस पशु–वृत्ति के बीच में घिरे होने पर भी कोई ऐसी गुप्त प्ररेणा विद्यमान है, जो कुछ एक चुने व्यक्तियों को इस पाश्विक वृत्ति से हटाकर ऊपर ले जाती है। यह पाश्विक वृत्ति से हटाने वाली प्रवृत्ति बाहरी सांसारिक पदार्थों में पूर्ण उदासीनता को प्रकट करती है। पशु–वृत्ति की भावना तथा उसका प्रबल–प्रभाव पूर्णतया समाप्त हो जाता है और इस प्रकार की उदासीनता प्रकृति का बनना प्रकट करता है। व्यक्ति स्वयं मृत्यु को बुलाता है और पाश्विक प्रकृति को बढ़ावा देकर स्वीकार करने वाली वृत्ति इस स्वीकृति के विरोध में खड़ी होता है। जब तक कि मन में निरोल चेतनता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रह जाता और जब तक वह एक उच्चतम व्यक्ति नहीं बन जाता, जिसका वह विचार करता था।

जब तक व्यक्ति अनुभव को नहीं पाता, उसके वास्तविकता की सूझ नहीं पड़ती। क्योंकि ठीक ही कहा गया है कि कहावत भी उसी समय पूरी होती है, तब उसके जीवन में धारण करके उतारा जाए। लेकिन कितने योगी हैं, जिन्होंने इस अवस्था को धारण किया है इसको पाना सरल नहीं। इसके लिए मन को फिर से समन्वित करना होगा अर्थात एकाग्र मन को धारण करना होगा, जिसमें कोई दुसरा विचार न हो। इंद्रिय गुणों के साथ रहकर भी उससे अलग रहना होगा। आत्मा की पूर्णता को पाने से पहले उसके लिए अनिवार्य है कि वह शरीर, मन तथा बुद्धि से अलग हटे। यही हमारा मन, जो इस समय सांसारिक विषयों में चारों ओर फँसा पड़ा है, वह ठीक अवस्था पाने पर आत्मा के साथ जुड़ जाता है। उस महाचेतन जगत में प्रवेश करने पर वह सारा दृश्य हमारा ही हो जाता है।

– मिडिलटन मर्रे

रहस्य, रहस्य के बीच में अपरिचित आत्मा है और उस अपरिचित ज्ञान के बीच में एक संबंध है। किसी एक विशेष बिंदु पर पहुँचने पर जीव को सारा गुप्त सत्य ऐसे मिलता चला जाता है जैसे घूँघट में से चला आ रहा हो।

– इविड

अब प्रश्न यह है कि अंतर में छिपी इस प्रेरणा को किस प्रकार पूरा करना है? आँखों के मध्य में प्रवेश करके, जिसे मृत्यु का दरवाज़ा कहा जाता है, पूर्ण रूप से खड़े रहने की क्रिया मृत्यु के समान होती है। आँखों के नीचे शरीर में से इंद्रियों को हटाने की क्रिया अपनी इच्छा (स्वेच्छा) से होती है। और ऐसा करने से व्यक्ति परे के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करता है, जिस ज्ञान को संत सत्गुरु अपने जीवनकाल में अपने शिष्यों को उपदेश देते समय अनुभव करवाता है। वह पवित्र नाम के साथ चेतन संपर्क स्थापित करने का प्रत्यक्ष अनुभव देता है– इस नाम से 'दिव्य ज्योति' और 'अनहद की धुन' का दाएँ ओर प्रवाह होता है, जो अंतर की अध्यात्म विद्या का केवल प्रारंभ ही है। कोई भी व्यक्ति किसी पूर्ण संत की शरण में आए बिना अपने आप अपने प्रयत्नों से आत्मा के इस दिव्य जगत में पहुँच नहीं सकता। यह तो बहुत दूर की बात है। यहाँ तक कि इस भौतिक जगत

में भी अपने जीवन के प्रारंभ से मृत्युकाल तक पूरा करने में मनुष्य को किसी दूसरे सजीव व्यक्ति की ज़रूरत पड़ती है। इसके तय करने में कितने ही शिक्षकों से आदेश लिए बिना वह कार्य नहीं कर सकता।

यहाँ पर सत्गुरु और मुर्शिद–क़ामिल (पूर्ण गुरु) के महत्त्व का ज्ञान होता है, ऐसे गुरु की यह सामर्थ्य होती है कि वह जीव के रोम–रोम से इंद्रियों के प्रभाव को समाप्त करके शरीर में आत्मा की आलौकिक धारा को प्रवाहित करता है। फिर उसे स्थूल चेतनता से ऊपर उठाकर इस योग्य बना देता है कि वह स्वयं अंतर के आलौकिक दृश्यों और सौंदर्यों को देखने वाला बन सके।

जब शरीर इंद्रियों को छोड़कर ऊपर उठता है, उस समय वैसा अनुभव होता है, जैसा कि मृत्यु के समय। इस अवस्था को पाने के लिए तुम्हें केवल एकाग्रचित बैठने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं करना। चुपचाप बैठकर आँखों के पीछे मध्य में सुरत को टिकाकर उन शब्दों का सुमिरन करना है जो किसी संत–सत्गुरु के मुख से पूर्ण सिद्धि के साथ निकले हैं। जिसमें समय–समय से आए संतों का जीवन प्रवाहित है और जो परे के मंडलों का ज्ञान देते हैं। तुम किसी आसन पर आराम से स्वस्थ वातावरण में चुपचाप बैठ जाओ– यहाँ तक कि अपने आप की भी होश न रहे, साँस के चलने का भी ध्यान न रहे। यह अपने आप एक आवाज़ से चलेंगे? ऐसे ही सारे शरीर का हाल होगा। पहले तो शरीर से इंद्रियाँ धीरे–धीरे हटना शुरू करती हैं, हाथों, पैरों की उंगलियों से फिर ऊपर आती हैं, फिर शरीर के अनेक चक्र टूटते हैं, उन पाँच तत्त्वों जिनसे यह शरीर बना है इन चक्रों में किसी एक तत्त्व का विशेष केंद्र होता है। अंत में हृदय केंद्र से शरीर हटता है; फिर गले के केंद्र पर पहुँचता है, जो शक्ति का केंद्र है, जिसे सृष्टि की माँ करके भी ब्यान किया है। इस प्रकार आँखों से नीचे सारा शरीर सुन्न हो जाता है। तब यह आज्ञा चक्र पर सीधा आँखों के मध्य में पहुँचता है।

यह वह स्थान है, जहाँ आत्मा की धारा एकत्रित होती है और फिर उस अंतर के बिंदु, जिसको 'ब्रह्म–केंद्र' या 'ब्रह्म का छिद्र' कहते हैं, उसमें प्रवेश करती है। यहाँ आकर वह ब्रह्मंड या ऊपरी सृष्टि में झाँकती है। यह शरीर का दशम द्वार है। यह नौ दरवाज़ों के बाद अंतर जाने का एक ही रास्ता है। यहाँ आकर खटखटाना पड़ता है और अंतर के मंडलों में पहुँचने की स्वीकृति लेनी पड़ती है। उन मंडलों की जो बहुत विस्तृत और सुंदर हैं, जहाँ प्रकाश और अनहद की

धारा स्वयं ही प्रवाहित होती है। यह अनंत धारा नीचे के भौतिक जगत में कहीं पर सुनाई नहीं देती।

प्लेटो (अफ़लातून) का कहना है कि नीचे का जगत एक घुड़साल के समान है, जहाँ दुखों तथा कष्टों के अलावा और कुछ भी नहीं। यह कष्ट तथा दुख अपने विचारों के कारण होते हैं। इस स्तर पर आकर व्यक्ति को परमात्मा की अपार कृपा मिलती है। इसी के कारण उसकी आत्मा ऊपरी मंडलों तक पहुँच सकती है। अब वह सूक्ष्म जगत में गुरु के दिव्य आलौकिक स्वरूप के साथ चलता है यहाँ पहुँचकर उसकी गुरुभक्ति हर प्रकार से पूरी हो जाती है। जब शिष्य गुरु के दिव्य स्वरूप पर पहुँचता है तो उसके अपने प्रयत्नों का कार्य समाप्त हो जाता है। अब गुरु अपने शिष्य की संभाल करता है और उसकी आत्मा को शब्द भक्ति में वास्तविक शिक्षा देता है अर्थात 'शब्द–धारा' की भक्ति सिखलाता है, जो उसका अपना वास्तविक स्वरूप है– 'शब्द–स्वरूप'। यहाँ से उस जीव को वह (गुरु) सदैव अपने साथ ऊपरी मंडलों के सफ़र में ले जाता है। यह मंडल अलग–अलग प्रकार की चेतनता के लिए है– जैसे कि कारण व यांत्रिक मंडल– बीज संसार, जिसके अंतर्गत हमेशा रचनात्मक शक्ति कई प्रकार की अनेकों रचनाएँ करती रहती हैं। इसके पश्चात गुरु जीव को महा आकाश से परे पारब्रह्म में ले जाता है, जो कि सुन्न और महासुन्न है। अंत में सचखंड ले जाता है, जहाँ चेतनता का सागर ज्योतिर्मय स्वरूप में आकाररहित निवास करता है जिसे सत्पुरुष कहते हैं, जो उस महान पुरुष का विशेष साक्षात्कार है। यह पवित्र और दैवी क्रिया साधारण और प्राकृतिक है। इसमें किसी प्रकार की असामान्य तथा कठिन क्रियाओं की आवश्यकता नहीं, न ही इस क्रिया में प्राणों को रोकने की आवश्यकता है (संतों ने इस अद्भुत क्रिया को 'आत्मा का विज्ञान' कहा है तथा इसका ज्ञान किसी योग्य तथा कुशल गुरु के द्वारा मिल सकता है, जो इस जीवन–धारा के सिद्धांत तथा अनुभव में दक्ष हो, जिसका अस्तित्व सृष्टि की समस्त रचना में विद्यमान है, जो सबका जीवन आधार है)।

संसार में सारे धर्मग्रंथ इस मूल तथ्य का प्रमाण देते हैं :

प्रजापतिर्वै इदमग्रमासीत्,
तस्या वाक् द्वितीयो आसीत्,
वाग्वै परमं ब्रह्मः ।।

— सामवेद (ताण्ड्य महाब्राह्मण 20:14.2)

अर्थात, सृष्टि के आदि में सृष्टिकर्ता, प्रजापति ब्रह्म था; उसके साथ वाक् या शब्द था और वाक् ही परम् ब्रह्म था।

आदि में शब्द था। शब्द परमात्मा के पास था और शब्द ही परमात्मा था। यही शुरू में परमात्मा के साथ था। सभी पदार्थ उसके द्वारा बनाए गए। उसके बिना कुछ भी नहीं बना। प्रभु में जीवन था और यह जीवन मनुष्यों की ज्योति था।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 1:1-5)

कलाम और कलमा सारी सृष्टि की रचना करने वाला सिद्धांत है। परमात्मा ने कहा "कुन–फ़िया–कुन" यह सब बने और इतना कहने पर सारी रचना हुई।

– अल–कुरान (सूरः अल–बक़रः– 116-117)

शबदे धरती शबदे आकाश ।। शबदे शबद भइआ प्रगास ।।
सगली सृसठि शबद के पाछे ।। नानक शबद घटे घट आछे ।।

– गुरु नानक, प्राण संगली

यही ज्योति और शब्द सारी सृष्टि का मूल सिद्धांत है। इसी मूल तथ्य का संत हर अभिलाषी को प्रत्यक्ष अनुभव देते हैं।

इस प्रकार वह दिव्य दीक्षा का अनोखा आशीर्वाद देते हैं। इस सिद्धांत की वह व्याख्या और उसका अनुभव, या यूँ कहें कि शिक्षा और दीक्षा दोनों देकर जीव को अंतर में जीवन की रेखाओं से बचाते हैं। यह उस शिक्षा का अंत नहीं, बल्कि आत्मा की प्रभु के घर जाने वाले लंबी यात्रा का प्रारंभ है। जिन्होंने जीवन के इस मार्ग को चुना है, वह वास्तव में सौभाग्यशाली हैं और जीवित–मृतक के इस अद्‌भुत अनुभव को प्राप्त करके जीवित–मुक्त बनते हैं अर्थात शरीर की जकड़ों में रहकर भी उससे स्वतंत्र रहते हैं। और इस प्रकार पूर्णता का जीवन व्यतीत करते हैं, जिस मंडल पर जाना चाहें आज़ादी से जाते–आते हैं। लेकिन फिर भी हमेशा परमात्मा की इच्छा में रहते है। ऐसा भाग्यशाली व्यक्ति सदा प्रभु में लीन रहता है। उसका मन, बुद्धि तथा इंद्री पूरी तरह संयम में चलते हैं। वह अपने शरीर रूपी घर का मालिक होता है– उनका दास नहीं। शरीर रूपी गाड़ी पर एक अच्छे सवार के समान बैठकर वह अपनी बुद्धि का सही नियंत्रण करता

है, जो मन को सही आदेश देती है। इस सही शिक्षा को प्राप्त करके मन–इंद्रियों के जाल में फँसने से इंकार कर देता है। इस प्रकार जीव उनके आकर्षण से मुक्त होता है। विस्तार की क्रिया ऐसी अवस्था में उलटती है और मनुष्य अपने में नियमित होता है, जिससे मन की चंचलता समाप्त होकर ख़ामोशी की अवस्था प्राप्त होती है। इसी अवस्था में प्रभु की ज्योति प्रकाशित होती है। सभी इस प्राचीन सिद्धांत की पुष्टि करते हुए हैं कि– जब तक इंद्रियाँ दमन न हों, मन खड़ा न हो, बुद्धि भी स्थिर न हो मानव को परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता। पूर्णता का जीवन देने वाले इस प्रकार के महान अनुभव ही 'मानव का दूसरा जन्म' कहलाते हैं। यह आत्मा का जन्म होता है न कि शरीर का जन्म। आत्मा से अग्रसर होकर मनुष्य अब आत्मा में रहता और चलता–फिरता है, शरीर के आकर्षणों का बहिष्कार या त्याग करता हुआ कर्मों के कारण प्रभाव वाले उस अटूट सिद्धांत को समाप्त कर देता है, जिसके बंधन में सभी हमेशा बंधे रहते हैं। इस राह पर दिन–प्रतिदिन प्रगति करने पर सुंदरता और आनंद का भरपूर भंडार और दृश्य खुल जाते हैं। नये–नये मंडलों की खोज होती है। ऐसे और अधिक जागृति उत्पन्न होती है, जो पहले व्यक्तिगत होती है, फिर महान मस्तिष्क की और उसके बाद आकाश तथा महाआकाश की होती है।

इसके पश्चात स्वतंत्र आत्मा मन तथा भौतिक सभी बंधनों से मुक्त होकर जीवन के अविनाशी आनंद को पा लेती है। उसके जीवन का उद्देश्य बिल्कुल बदल जाता है। यह महान सृष्टि अब जीवन के एक सिद्धांत का साक्षात्कार करती है, जो सभी जगह जानदार और बेजान सारे पदार्थों में कार्य करती है। जिस नज़रिये से वह अब इस संसार को देखता है, वह पहले से बिल्कुल भिन्न है। अब वह इसे प्रभु के रहने का मुक़ाम सा स्थान समझता है, उसमें प्रभु को रहते देखता है। इतना ही नहीं, बल्कि उसके प्रत्येक अंग में और सृष्टि की सारी रचना उसे सागर में अनेकों बुलबुलों के समान नाशवान तथा क्षणभंगुर नज़र आने लगती है। अब वह परमात्मा में रहता और उसी में मरता है। सेंट पॉल के समान अब वह ईसा में सूली पर लटकता है अर्थात फ़ना–फ़िल़–शैख़ होता है, और ईसा उसमें रहता है। इस प्रकार मृत्यु का बार–बार अनुभव होने पर उसे मौत पर ज़ोरदार विजय मिलती है। यही नहीं, बल्कि इस अवस्था में पिता–पूत एक समान रंग जाते हैं, यद्यपि बाहर वाला हाड़–माँस का बना व्यक्ति कर्मों का चक्र पूरा करने को अब भी मौजूद है। जीवन के जाल से निकलने के लिए वह

बाक़ी बचे कर्मों के चक्र को निभाता है, लेकिन अंतर का आदमी अर्थात आत्मा समय पाकर अधिकाधिक बलवान और विवेकशील होती जाती है। इसलिए थॉमस–ए–कॅम्पिस को कहना है कि,

आत्मा के लिए शरीर रूपी चमड़े का त्याग करो, मरना सीखो ताकि तुमको जीना आ जाए।

इसी प्रसंग में कबीर कहते हैं :

कबीर जिसु मरने ते जगु डरै मेरे मनि आनन्दु ।।
मरने ही ते पाइऐ पूरनु परमानन्दु ।।

– आदि ग्रंथ (सलोक भगत कबीर, पृ.1365)

मरीये तो मर जाइये, छूटि परै जंजार ।
ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार ।।

– संत कबीर

चारों सुसमाचारों में इसी का वर्णन कई जगहों पर किया गया है :

जिसको जीवन मिला है, उसको खोना पड़ेगा; जो मेरे कारण जीवन खोता है, वह इसे प्राप्त करेगा।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 10:39, 18:25)

क्योंकि जो कोई भी अपना जीवन बचाता है इसे खो देगा, लेकिन जो कोई मेरे लिए इसे खोएगा वह इसे बचाएगा।

– पवित्र बाइबिल (मरकुस 8:35)

जो कोई अपने जीवन को बचाएगा वह इसे खो देगा, लेकिन जो कोई मेरे लिए इसे खोएगा वह इसे बचा लेगा।

– पवित्र बाइबिल (लूका 9:24, 17:33)

जो कोई अपने जीवन से प्रेम करता है, वह इसे खो देगा, जो इस संसार में अपने जीवन से नफ़रत करता है, वह अमर जीवन को प्राप्त करेगा।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 12:25)

दादू नामक प्रसिद्ध फ़क़ीर का कहना है :

दादू पहिली मरि रहै, पाछे तै सब कोइ ।।

– दादू दयाल की बानी–1 (23. जीवत मृतक को अंग)

गुरु नानक भी यही कहते हैं :

नानक जीवतिआ मरि रहाऐ ऐसा जोग कमाईऐ ॥

– आदि ग्रंथ (सूही म.1, पृ.730)

पैग़ंबर मुहम्मद साहिब ने अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए कहा कि मृत्यु से पहले मरने की कला का अभ्यास करें।

मूतू-क़िबलान तू मौतू

अर्थात, मरने से पहले तुम मरो।

मुसलमान ख़्वाजा हाफ़िज़, शम्स तबरेज़, मौलाना रूमी आदि मुसलमान फ़क़ीरों ने भी इसी रहस्य पर प्रभाव पूर्ण ज़ोर दिया है।

चू ज़े हिस बेरूँ नयामद आदमी,
बाशद अज़ तस्वीरे आज़मी ।

अर्थात, जब तक तुम इंद्रियों का घाट नहीं छोड़ते तुम अंतर के जीवन से अनभिज्ञ हो।

आँ तूइ कि बेबदन दारी बदन,
पस मतर्स अज़ जिस्मो जाँ बेरूँ शुदन ।

अर्थात, तुम्हें शरीर से बाहर आने पर भय क्यों लगता है? तू मौत से न डर क्योंकि तू वह है, जिसका इस शरीर को छोड़कर और भी शरीर है।

इस प्रसंग में महापुरुषों के कितने प्रमाण दिए जा सकते हैं। हम अंत में अल–आर–वासरमान की कुछ पंक्तियाँ देकर इसे समाप्त करते हैं।

अधिक लोग पूर्णता का एक अधूरा व्यक्तित्व हैं। मृत्यु के बाद केवल अखंड और इसलिए, मुक्त आत्मिक अंग रह जाता है। इसलिए मृत्यु के पश्चात का जीवन अध्यात्मिक होता है क्योंकि मृत्यु इसके बाहरी रंग–विरंगे गुम्बद को

समाप्त करती है और आत्मा को 'रात की परछाइयों' से ऊपर उड़ान भरने देती है, न कि अंदर की ओर इसके जैव अस्तित्व को नष्ट करने हेतु। इसलिए ऊपर से शारीरिक विध्वंस नज़र आने वाली मृत्यु आत्मिक अमरता से पूर्ण होती है।... जिसे हम जीवन कहते हैं– वह क्षय है। इसलिए मृत्यु–मंडल में दुनियावी जीवन का वातावरण अमरता की दिव्यता को कलंकित करता है। दूसरी ओर, द्विजन्मी हुई और एकता में पुनःस्थापित हो चुकी आत्मा, न कि मृत्यु की परछाईं अर्थात भौतिक दृव्य, वास्तविक अर्थों में सारी प्रकृति में फैली हुई पाई गई है क्योंकि हर जगह अन्तिम सच आत्मा ही है।... यदि मृत्यु का वातावरण हठा दिया जाय, तो मनुष्य देखेगा कि केवल एक ही (प्रभु) सदैव प्रकाशित और सदैव रहने वाला है। जिस तरह दिन और रात एक हैं, उसी तरह जीवन और मृत्यु, प्रकाश और संध्या भी एक ही हैं।...सांसारिक जीवन और इस जीवन से पहले ही अमरता, दोनों ही अंतिम आध्यात्मिक सच्चाई का अनुभव हैं। जीवन और इससे पहले की रूहानी एकता का अनुभव होने के पश्चात हम जीवन और मृत्यु जैसे विरोधी जोड़े बनाने छोड़ देते हैं... क्योंकि काल और परिवर्तन के दौरान केवल एक (प्रभु) ही उसी तरह अपरिवर्तनीय रहता है।

आगे जाकर वे कहते हैं :

मृत्यु की डरावनी खाई में जाना सीखो, क्योंकि जहाँ नाशवान जीवन समाप्त होता है, वहाँ आध्यात्मिक जीवन का प्रारंभ होता है। मृत्यु के साथ स्वतंत्र आत्मा अंधेरे की परछाइओं को ख़त्म करके उस एक अपरिवर्तनशील प्रभु में जन्म लेती है।"

मुहम्मद साहिब भी जीवित रहते हुए मौत का अनुभव पाने पर बड़ा ज़ोर देते हुए कहते हैं :

इस तरह की मौत तुम्हें क़ब्रों में नहीं ले जाएगी, बल्कि तुम्हें अंधेरे से ज्योति में ले जाएगी, इसलिए प्रतिदिन मरकर शरीर छोड़ना सीखो।

जब व्यक्ति अपने अंतर शरीर से हटना सीखता है, तो गुरु अपने आलौकिक रूप में जीव की सहायता करने आ जाता है और उसके वास्तविक घर में पहुँचाता है, आगे के मंडलों में मदद करता है, उसके जीवनकाल में भी तथा मरने के बाद भी जब उसका नाशवान आवरण उतर जाता है। इस संबंध में गुरु नानक कहते हैं :

नानक कचड़ियां सिउ तोड़ ढूंड सज्जन संत पकियां ।।
ओइ जीवदे बिछुड़हि ओइ मुइआ न जाही छोड़ि ।।

– आदि ग्रंथ (मारू वार म.5, पृ.1102)

गुरमुख सउ करि दोसती सतगुर सउ लाय चितु ।।
जंमण मरण का मूलु कटीऐ तां सुखु होवी मित ।।

– आदि ग्रंथ (सलोक म.4, पृ.1421)

सचा सतगुरु सेव समालिया ।।
अन्ति खलोआ आये जि सतगुर अगै घालिया ।।

– आदि ग्रंथ (मलार वार म.1, पृ.1284)

एक मुसलमान फ़क़ीर का भी यही कहना है :

दामने ऊ गीर ऐ यारे दलेर,
कऊ मनज़्ज़ह बाशिद अज़ बालाओ ज़ेर ।

अर्थात, ऐ बलवान आत्मा! परमात्मा के हाथ को मज़बूती से पकड़ लो, क्योंकि वह यहाँ और आगे की दोनों दुनिया से ऊपर है।

ऐसा ही बाइबिल में लिखा है :

लो, मैं दुनिया के अंत तक तुम्हारे साथ रहूँगा।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 28:20)

मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ूंगा।

– पवित्र बाइबिल (इब्रानियों 13:5)

इस प्रकार मनुष्य जीवन का सबसे महान उद्देश्य प्राप्त होता है और पूर्ण जीवन का अनुभव मिलता है। यह विषय आत्मा के द्वारा आत्मा का संपर्क होना

है। यह संपर्क किसी पूरे संत से दीक्षा लेकर दुनिया की मोह–माया छोड़ने पर मिलता है। संत यह शिक्षा सभी को समान रूप से देते हैं। इसके देने में किसी का रंग–रूप व आकार आदि का भेद–भाव नहीं करते। इसके पाने के लिए दुनिया के भ्रम और अपने मन के बनाए आवरण को उतारना पड़ता है, जिनसे आत्मा ढकी पड़ी है। जब तक दुनिया को मोह–माया जिनसे हम घिरे पड़े हैं। हम अलग होकर निरोल आत्मा नहीं बन जाते तब तक वह परमात्मा, जो सबका बनाने वाला है, उसके पूर्ण जीवन के सौंदर्य को नहीं पा सकता।

m

4.

बंधन में मृत्यु

प्रकृति में जीवन के पश्चात् मृत्यु होती है और मृत्यु जीवन की ओर अग्रसर करती है। मृत्यु, जो एक प्रकार से जीवन का अंत है, उसी समय दूसरे जीवन का आरंभ है और सामान्यता यह जीवन का पहले वाले से ज़्यादा ऊँचा, अच्छा और उचित वातावरण के लिए होता है।

परिवर्तन जीवन का सिद्धांत है और यह आत्मा की गुप्त संभवताओं को सजीवता से सजाने में कार्य करता है। यह अपनी कार्य शक्ति से केवल आत्मा का परिवर्तन ही नहीं करता, जो ऊपर की यात्रा में अधिक बनने योग्य तथा निर्मल है, बल्कि इसके साथ बेजान पदार्थों से मानव जन्म भी देता है। और अंत में आत्मिक चेतनता को बढ़ाता जाता है। मृतक कहलाए जाने वाले पदार्थ भी वास्तव में मरा हुआ नहीं होता। हाँ, उसमें विद्यमान शक्ति कुछ समय के लिए गुप्त अवस्था में हो सकती है।

जिस प्रकार पुराने फटे कपड़े को, जिसकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी है, उतारना पड़ता है। और उसके स्थान पर अपनी इच्छानुसार नया धारण करना होता है। यही सिद्धांत प्रकृति का है, जो भगवान के द्वारा चलाया जाता है। कहा जाता है कि दयालु पिता परमात्मा ने आदेश दे रखा है कि उसके बच्चों को वही दिया जाए जो वह हृदय की तीव्रता से चाहते हैं।

पिता कृपाल आकगया एह दीनी, बारिकु मुखि मांगै सो देना ।।

– आदि ग्रंथ (मलार म.5, पृ.1266)

भू–मंडल पर रहते हुए जीवन की अनिवार्यताओं जैसे प्रेम, ज्योति और जीवन को देते हुए तथा उसके साथ उसके सहायक पदार्थों– जैसे भमि, जल, सूर्य, वायु, और आकाश– को प्रदान करके इसके साथ जीवन रखने के समस्त पदार्थों को देने में सृष्टि के परम पिता के अपार दयालुता तथा उदारता से, जिसका कोई अंत नहीं सभी को स्वतंत्रता से इन पदार्थों को दे रखा है। यद्यपि इसका प्रयोग प्रत्येक व्यक्ति अपनी–अपनी पहुँच तथा आवश्यकतानुसार प्राप्त करता है। उसकी दी हुई चीज़ें अनगिनित तथा असीमित है अर्थात कभी समाप्त नहीं

होने वाली और सदियों से व्यक्ति ने इनका बेहद ग़लत (अनुचित) ढंग से प्रयोग किया है। इन असीमित उपहारों से संतुष्ट न होकर व्यक्ति फिर अधिकाधिक चाँदी सोना, जीवन की अन्य सुविधाओं और आवश्यकताओं और कई अन्य पदार्थों की लालसा करता है, बजाए इसके कि वह उन सब चीज़ों के लेकर कृतज्ञ हो जो परमात्मा ने उसे अपनी अपार दयामेहर से दी हैं। हम अपने आपको, अपने पास रहने वालों को हमेशा कोसते रहते हैं, जिनको हमारे से अधिक आराम उपलब्ध है। फिर ऊपर के मासूम सितारों को कोसते हैं, यहाँ तक कि हम अपने स्वयं के भाग्य के ख़िलाफ़ भी कुछ कहने तथा आलोचना करने में नहीं हिचकिचाते, जिसको हमने अपने आप अपने कर्मों से बनाया है। "इतनी वस्तुओं को प्राप्त करने पर भी व्यक्ति केवल एक छोटी सी बात के लिए अपना संतुलन खो बैठता है।"

> ਦਸ ਬਸਤੂ ਲੇ ਪਾਛੈ ਪਾਵੈ ॥
> ਏਕ ਬਸਤੁ ਕਾਰਨਿ ਬਿਖੋਟਿ ਗਵਾਵੈ ॥

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म.5, पृ.268)

मानव जीवन का मिलना बड़ी बरकत है। यह बडा दुर्लभ है और उसकी अपार कृपा से प्राप्त होता है। यह बहुत लंबे अरसे के पश्चात चौरासी लाख यो. नियों का सारा चक्र काटने के बाद मिलता है। यह हमारे लिए एक बड़ा सुअवसर है कि हम हम अपने शरीर के अंतर छिपे आत्मिक भंडारों को खोजें, जिसका शायद हमें लेशमात्र भी ध्यान नहीं। हमारे में से अधिकतर अनावश्यक और अल्प जीवी पदार्थों के पीछे हैं, जिनसे इस भौतिक जीवन के विषय–विकारों का आनंद मिलता है, लेकिन वास्तविक आनंद नहीं मिलता। इस क्षणभंगुर और परिवर्तनशील आनंद के लिए जो शायद हमें मिले या न भी मिले, हम हर प्रकार के उचित व अनुचित ढंग अपनाकर ज़मीन–आसमान को एक करते हैं, जिसके लिए जीवन के बराबर कभी अपना जीवन भी देते हैं और इस प्रकार किसी एक या दूसरी चीज़ के लिए प्रयोग में लाए गए हैं। अनुचित साधनों के लिए तथा उन प्रयत्नों के कारण जो दुख और कष्ट सहने पड़े, उनके लिए अपने जीवन की आयु को समाप्त कर देते हैं।

प्रकृति अपने निर्माण व उद्देश्य में व्यर्थ का ख़र्च नहीं करती। जैसा कोई सोचता है, वैसा ही बनेगा। हमारी भावनाएँ तथा मनोविकार हमारे चित्तवेग, इच्छाएँ तथा लालसाएँ हमारे शरीर छोड़ने पर भी समाप्त नहीं होतीं। वे स्थूल आवरण के नीचे अंतर में एक सूक्ष्म आवरण धारण कर लेती हैं। इस प्रकार आत्मा के

ऊपर एक और आवरण चढ़ जाता है। यही नहीं, बल्कि शरीर में संचित कर्मों के भंडार में और बीज उत्पन्न होने के लिए बढ़ जाते हैं। यही कारण है कि शरीर अपने अथाह साधनों के साथ अपनी सहयोगी आत्मा पर शरीर रूपी नए प्रकार का अस्थाई आवरण चढ़वाती है, जो कि हमारी अंतर की चेतन इच्छाओं की पूर्ति करने का सबसे बड़ा सुअवसर होता है। अंत में जब मृत्यु का समय आता है, तो जीवन के सारे छोटे से बड़े सभी कर्मों का, पर्दा उठने पर दृश्य सामने नज़र आता है। मृत्यु–शय्या पर शायद व्यक्ति को वास्तविकता की थोड़ी झलक मिल जाए, लेकिन उस समय उसको जानने का समय नहीं रहता। इस संसार में जीवन का यह चक्र चलता रहता है और प्रत्येक काल के अंत में जीवन तथा मृत्यु की क्रिया को नई स्फूर्ति मिलती है, जिसके साथ स्वाभाविक रूप में परिणामस्वरूप खुशी, दुख, सज्जन तथा दुश्मन कभी ज़्यादा कभी कम प्राप्त होते है। यह चक्र लगातार चलता रहता है, क्योंकि इस पृथ्वी पर शरीर धारण करके कोई भी उन चीज़ों को पाकर संतुष्ट नहीं हुआ, जो उसको मिली हैं, बल्कि नई इच्छाएँ और लालसाएँ बढ़ाता रहता है। इन नई चीज़ों के साथ अफ़सोस का वह अंश मिला होता है, जो उसने पाना चाहा लेकिन पा न सका। इस प्रकार बिना सोचे–समझे वह अजगर साँप के दाँत ज़माने में लगातार लगा रहता है। अपने स्वयं बनाए संघर्षों के साथ अपने बनाए हथियारों से, जो परछाई के समान उसको हर समय क्रोध या बदले की क्रिया को लेकर घेरे रहते हैं, वह एक जीवन के बाद दूसरे जीवन में लगातर लड़ने में संलग्न रहता है। प्रकृति कुम्हार के चक्र के समान अनेकों प्रकार के एक के बाद दूसरा मिट्टी का बर्तन बनाने की सुविधा प्रदान करती है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति की असंतुष्ट पिपासा और आशाएँ संतुष्ट हो जाएँ। चोटी से एड़ी तक व्यक्ति अनगिनित इच्छाओं से लदा होने के कारण स्वयं का दास बन जाता है। ऐसा न होने पर वह ऊपर प्रभु के मार्ग पर चल सकता है। आख़िर मनुष्य है क्या? परमात्मा + इच्छाएँ। और इसके विपरित परमात्मा क्या है? – मनुष्य में से इच्छाएँ घटा दो।

विलियम वर्ड्स्वर्थ नामक एक महान दार्शनिक कवि ने अपनी कविता 'अमर जीवन' में बच्चे की बढ़ने की अवस्था का विवरण अत्यंत सुंदर ढंग से किया है।

सारे जीवन का सितारा– आत्मा, जो हमारे साथ
उभरती है, किसी अन्य दुनिया की रहनेवाली हो चुकी है
और बहुत दूर से आती है– पूरी तरह अचेतन स्थिति में

नहीं और न ही पूरी तरह नग्न स्थिति में। बल्कि जब प्रभु से, जो हमारा घर है, बिछुड़कर आते हैं, तो हमारे पीछे शान के बादल होते हैं। बचपन में स्वर्ग हमारे आस–पास होता है। ज्यों– ज्यों बच्चा बढ़ता है, क़ैदख़ाने की छाया इसे घेरना शुरू कर देती है। धरती माता अपनी गोद में अपनी ख़ुशियों से भर लेती है। उसकी दयालुता में भी एक अपनी तरह की तीव्र इच्छा छिपी होती है और माँ का दिल रखते हुए भी उसका उद्देश्य इतना छोटा नहीं। दाई अपने पाले बच्चे– अंदर बसते मनुष्य को उसके असली शाही महलों की, जहाँ से वह आया है, शान को भुलवाने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा देती है।

यह है इस संसार में जीवन का भद्दा चित्र, जो हम दिन–प्रतिदिन देखते हैं। जैसा कि हमारे भाग्य में लिखकर आया है, उतना पा चुकने के बाद भी हम भूखे रहते हैं और पशुओं के समान धन, शक्ति आदि सांसारिक विषयों का आनंद प्राप्त करने की अधिकाधिक लालसा बनी रहती है, बजाए इसके कि हम कुदरत के इतने उपहार पाने के अभारी हों। हम अगला–पिछला सब देखते हैं और जो कुछ नहीं मिला, उसकी आकांक्षा करते है। प्रकृति हमारी इस निरंतर बढ़ती हुई भूख को शांति से नहीं देख सकती और अपनी जादू की छड़ी से हमें सर्सी (Circe) जैसे सूअर बनाकर निकाल देती है, ताकि हम अपनी भूख को गंदगी में शांत करके उसी में समाप्त हो जाएँ। जब कुछ विवेकशील महापुरुष जो प्रभु के द्वारा जादू के फूल देकर भेजे जाते हैं, केवल उस माया का सामना अपने स्थान पर कर सकते हैं और अपने शिष्यों को बचा सकते हैं। उन्हें सूअरों से फिर मनुष्य बना सकते हैं और उनके साथ अन्य सारे जो उस क़ैदख़ाने में अपने–अपने स्वभाव के अनुसार विभिन्न दंड पाए हुए हैं। हमारे मन का जो वेग बहुत तीव्र होता है उसी से हमारा जीवन का क्रम, न केवल इस संसार में बल्कि इसके बाद भी चलता है।

आओ अब हम अनिवार्य रूप से आने वाले परिवर्तन, जिसको मृत्यु कहते हैं देखें। जीवन के एक पहलू से दूसरे पहलू में परिवर्तन होना जीवन का अनिवार्य अंग है। यह अपने समय पर होता है, लेकिन तेज़ तथा आश्चर्यपूर्वक ढंग से अचानक आती है। विशेषकर जबकि सबसे कम सोची जाती है। मृत्यु तारीख़

आदि का ध्यान नहीं करती। इसको न कोई पहले जान सकता है और न ही बुद्धि और चतुराई द्वारा इससे बच सकता है। प्रत्येक जीवित वस्तु के रहने का अपना बंधा समय होता है। हम सब रहते, चलते और कार्य समय पर करते हैं और समय के समाप्त हो जाने पर यह परिवर्तन आता है। इसी प्रकार बार–बार होता रहता है जब तक कि कोई समय के बंधनों से दूर हो कर अमर होकर ऊपर नहीं उठ जाता। इसलिए मृत्यु कुछ ऐसी चीज़ है, जो वास्तव और यथार्थ है, जिसे कभी हटाया नहीं जा सकता। संसार के समस्त अनिश्चित पदार्थों में केवल मृत्यु निश्चित है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे अमीर हो या ग़रीब, राजा हो या भिखारी, जवान हो या बूढ़ा, तंदरुस्त हो या बीमार, सभी को मृत्यु के जाल से निकालना पड़ता है, चाहे कोई चाहे या न चाहे। व्यक्ति बरसों जीए, सौ साल या पल भर– लेकिन कोई भी उसी जीवन में हमेशा नहीं रह सकता। यह समय पाकर अवश्य नाश होगा तथा एक बोझ बन जाएगा, मानो जबकि गले में एक पत्थर बंधा हो। उस समय व्यक्ति निराशावश होकर गुस्से में चिल्ला पड़ेगा कि इससे जल्दी छुटकारा हो यूँ ही यह आत्मा पर भार बनी पड़ी है। कहाँ है? :

राणा राउ न को रहे रंगु न तंगु फकीर,
बारी आपो, आपनी कोई न बांधे चीर ।।

– आदि ग्रंथ (रामकली म.1, पृ.936)

इसी विषय में एक मुसलमान दरवेश कहते हैं :

करदाई बर दीगराँ तोहा गरी,
मुद्दते बनशीं व बरखुद में गरी ।

अर्थात, हम दूसरों के मरने पर रोते हैं, हमको अपने आप पर रोना चाहिए और परलोक की सामग्री जुटानी चाहिए।

आगे सवाल आता है– कि क्या मृत्यु एक पीड़ा देने वाली क्रिया है। साधारणतया तो अधिकतर के साथ ऐसा ही होता है। धर्मग्रंथ अत्यंत कष्ट देने वाली पीड़ा का वर्णन करते हैं, जो मरते समय एक व्यक्ति को होती है। श्रीमद्भगवद्गीता में आता है कि मरते समय व्यक्ति को इतना अधिक दर्द होता है, जैसा कि अनुमान है एक लाख बिच्छू एक साथ डंक मारे। कुरान शरीफ़ में आता है कि मरते समय व्यक्ति को इतना कष्ट होता है, जैसे कि मुँह के रास्ते से काँटों वाली झाड़ी डाल कर नीचे के रास्ते से खेंचकर निकाली जाए।

गुरुवाणी में भी ऐसा ही वर्णन है :

जिन्दु निमाणी कढीए हडा कू कड़काई।

– आदि ग्रंथ (सलोक सेख फ़रीद, पृ.1377)

यह सभी वर्णन केवल एक ही बात की पुष्टि करते हैं कि मरते समय व्यक्ति को कितनी पीड़ा होती है। जिस समय यम बलपूर्वक आत्मा को शरीर से बाहर निकालते हैं जो उस समय वास्तव में होता है, वह केवल मरते व्यक्ति को ही अनुभव होता है। मृत्यु के अनुभव को प्राप्त करने के पश्चात कोई भी मृत्युलोक की सीमा पार करके हमें यह बतलाने नहीं आता कि उसे किस प्रकार का कष्ट हुआ। प्रत्येक व्यक्ति कष्ट सहता है और सदा के लिए शांत हो जाता है। मृत्यु–शय्या पर होना ईसा के समान कीलों पर लेटना है, मृत्यु–घर भट्टी के समान है। शायद ही कोई व्यक्ति इससे दुखी हुए बिना रह सकता है। जब कुछ व्यक्ति कई दिनों तक बेहद तकलीफ़ पाते हुए घिड़क–घिड़ककर बिस्तर पर लेटे प्राणों को छोड़ते हैं, तब कौन मौत की पीड़ा को मानने से इंकार करेगा? उस समय सभी लोग उसके पास मज़बूर खड़े होते हैं। अच्छे से अच्छा डॉक्टर भी आख़िर तक दवा. इयाँ देता रहता है। देखभाल करने वाले पाँव के पास खड़े होते हैं। नज़दीकी रिश्तेदार आँखों में आँसू भरकर दुखी चेहरे पर आख़िरी विदाई देने की अंतिम क्षणों की प्रतीक्षा करते हैं। उस जाने वाले ग़रीब, उसके साथी, स्त्री और बच्चों की चीख–पुकार और दर्दनाक पुकार को कौन सुनता है?

देहरी बैठ माता रोवै ले गये भाई ।।
लट छिटकाएं तिरिआ रोवे हंस इकेला जाई ।।

– आदि ग्रंथ (आसा भगत कबीर, पृ.478)

सिकंदर मॅसिडोनिया का राजा, जो उस समय संसार का विजेता कहलाता था– कहा जाता है कि उसे किसी साधु ने यह बतलाया था कि जब तुम मरोगे, उस समय पृथ्वी लोहे की और आसमान सोने का होगा। क्योंकि यह दोनों बातें ही असंभव हैं, इसलिए राजा ने इसको झूठ सोचा और भ्रम में आकर यह मान लिया कि शायद वह सदा जीवित रहेगा। उसने यह विश्वास कर लिया कि वह भी ओलम्पिया के देवता के समान अमर रहेगा। दूर पूर्व में लंबी यात्रा से थककर जैसे ही वह ग्रीस जाते समय बॅबिलोन के रेगिस्तान के पास से गुज़र रहा था, तो उसे बुखार चढ़ा। घोड़े के काठी पर बैठने में असमर्थ होने के कारण उसे सहारा

देकर उतारना पड़ा। उसके एक सिपहसालार ने लोहे के पलंग को, जिसके अंदर मखमल लगी थी, नीचे बिछाकर उस पर राजा को लिटा दिया और सोने से जड़ी छतरी को उस (राजा) पर खोलकर खड़ा हो गया, ताकि राजा पर रेगिस्तान के सूरज की कड़ी धूप न पड़े। उस समय अनेकों लड़ाइयों में से विजयी होने वाला राजा ने यह महसूस किया कि उसका अंत निकट ही है, क्योंकि वह अब लोहे की धरती के ऊपर तथा सोने के आकाश के नीचे पड़ा है, वह भयभीत हो गया। अपने पास खड़े अच्छे से अच्छे डॉक्टरों को आँखों में आँसू भरकर कहा कि उसे बचाने का वह इस समय पूरा प्रयत्न करें, ताकि वह कम से कम घर तक पहुँचकर अपनी माँ, जिससे उसका अत्याधिक स्नेह है, मिल सके। परंतु उनमें से प्रत्येक ने अपनी–अपनी मज़बूरी बतलाई। उसने उसे बचाने के लिए पहले अपना आधा राज्य देने को कहा; फिर पूरा भी देने को कहा, यदि वह उसको बचाकर उसकी इच्छा की पूर्ति कर सकें। लेकिन परमात्मा की इच्छा के आगे कौन टिक सकता है? उसकी बीमारी के दसवें दिन, जैसे ही उसके सिपहसालार एक–एक करके मरने वाले राजा के कमरे में से गुज़रे, बादशाह ने उनको अंतिम मुस्कान देते हुए कहा और यह आदेश दिया कि उसको अर्थी पर लिटाकर उसके दोनों हाथों को बाहर निकाल दिया जाए, जिससे सभी लोग यह देख सकें कि इतना महान राजा भी उसी प्रकार ख़ाली हाथों जा रहा है, जैसे वह इस संसार ने आया था।

इसी प्रकार की दर्द–भरी कहानी हम एक बड़ी महान और समझदार रानी की सुनते हैं, जिसने बड़े विस्तृत राज्य पर शासन किया था। सभी लोग उसके चकाचौंध कर देने वाले सौंदर्य और बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करते थे। उसने काफ़ी लंबे अरसे तक बड़ी चतुराई से भली प्रकार शासन किया। विलासताओं में लालन–पालन हुआ। सैंकड़ों नौकर–चाकर देखभाल करने वाले थे। ऐसे वातावरण को पाकर उसने पल भर को यह न सोचा कि मृत्यु जैसी भी कोई चीज़ इस संसार में है, अपने अंतिम समय में उस घोर कष्ट को पाकर बड़ी दुखी हुई। शाही दरबार के डॉक्टर, जो उस समय उसके पास खड़े थे, उसके दुख में वह भय को कम करने में कुछ सहायता न कर सके। जैसे ही रानी के चेहरे पर मृत्यु की झलक पड़ने लगी, वह रानी को अंतिम सफ़र के लिए तैयार होने की तसल्ली देने लगे। रानी ने बड़े आश्चर्य से पूछा— क्या? मैं कहाँ जा रही हूँ?

इसके उत्तर में उन्होंने एक साधारण जवाब दिया, वह उस दुनिया में जा रही है, जहाँ से कोई वापिस नहीं लौटा।

रानी के कानों को यह सुनकर बिल्कुल विश्वास नहीं हुआ और वह बोली— क्या मैं स्वप्न देख रही हूँ? फिर जवाब मिला कि मल्का–ए–आलम, आपको जाना पड़ेगा। रानी ने फिर पूछा कि क्या ऐसी भी जगह है जहाँ से कोई वापिस नहीं आता। यदि है, तो वह कहाँ पर है?

इस पर दरबारियों ने फिर जवाब दिया कि वह स्थान इस संसार से बहुत दूर है।

रानी ने फिर पूछा कि क्या तुम मेरे अंतिम समय इसका पता नहीं लगा सकते? और फिर मैं वहाँ आराम के साथ रह सकूँ, इसके लिए तुमने मेरा क्या प्रबंध किया है?

दरबारियों ने कहा, 'कुछ भी नहीं'।

घबराई हुई रानी ने फिर पूछा कि तुममें से कितने लोग मेरे साथ चलेंगे?

दरबारियों ने फिर जवाब दिया कि वहाँ आपको अकेले ही जाना होगा।

मुझे वहाँ अपनी देखभाल के लिए कितने लोग ले जाने की इजाज़त मिली है?

फिर उत्तर मिला कि कोई नहीं? एक भी साथ नहीं चलेगा। जीवन की वास्तविकता की तरफ़ हम कितने हद्द तक नासमझ हैं। हम संसार के प्रतिदिन के कार्यों में कितने अधिक समझदार हैं। लेकिन यह बेशक़ हैरानी देने वाली बात, मालूम पड़ती है कि जीवन के कटु सत्यों का हमें न के बराबर भी पता नहीं, जबकि हम सब पर वह किसी भी समय अवश्य आनी है और उस समय दूसरों के समान हमें भी अकेले और ख़ाली हाथों जाना है।

भजनीक कहता है कि "इस संसार में मैं नंगा आया और नंगा ही चला जाऊँगा।"

नांगे आवनु नांगे जाना ।।
कोई न रहि है राजा राणा ।।

– आदि ग्रंथ (भैरउ भगत कबीर, पृ.1158)

यह समय सभी लोगों के भाग्य में अवश्य आना है। हम इस संसार में रोते आते हैं और रोते हुए चले जाना है। इस संसार में रोते हुए आने वाली बात तो समझ में आती है। माता के पेट में से बाहर आते समय बच्चा इसलिए रोता है कि पूरे नौ महीने गर्भ में उल्टा अंधेरी कोठरी में गंदगी के अंदर लटका रहे। उसे जीवन का कोई प्रकाश वहाँ नहीं मिलता था। यही कारण है कि बच्चा होने के बाद किसी भी प्रकार का प्रकाश हम कुछ रातों तक वहाँ रखते है। जब वह

रोता है, तो हम उसका चेहरा उस समय प्रकाश की ओर करते हैं। लेकिन संसार छोड़ते समय जब हम वापिस अपने पिता परमात्मा के घर जा रहे हैं, तो हम क्यों रोएँ? इस जीवन में यदि हम चाहते, तो हम जीवन के सही उद्देश्य (अर्थात प्रभु से मिलन) को पाने के लिए चेतन रूप में इसे परमात्मा के साथ जोड़ने का कार्य सकते थे। किसी न किसी कारणवश हम ऐसा करने की चिंता नहीं करते और इस प्रकार यह मानव शरीर बचपन से लेकर मृत्यु तक व्यर्थ ही चला जाता है। एक बार यह अवसर हाथ से निकल जाने पर हम नीची योनियों में प्रवेश कर जाते हैं। सबसे ऊपरी सीढ़ी पर चढ़ने के बाद अक्सर हम गिर जाते हैं। ऐसा बरसों रहकर हमने जो अस्थाई संबंध धारण कर लिए हैं, वह दुख का कारण हैं और इससे हमारा अंत समय अत्यंत दुखदाई हो जाता है। फिर दूसरा कारण कि हमने शरीर छोड़ने की कोई तैयारी नहीं की होती। हमें यह भी पता नहीं होता कि यह शरीर जो चंद रोज़ रहने को हमें मिला था, उसे कैसे छोड़ना है और इसे छोड़कर हमें कहाँ जाना है? यही भय हमको घबराहट पैदा करता है कि मरकर हमें अपरिचित स्थानों में भेजा जाता है। इसी के कारण इतनी घबराहट और भय होता है, जिसका अनुमान लगाना भी कठिन है। इसी कारण कहा जाता है :

कबीर जब हम आये जगत महि जग हंसे हम रोय ।।
ऐसी करनी कर चलहु हम हंसे जग रोय ।।

फ़्रांसिस क्वैर्ल्स (1592-1644) तक एक योगी कवि हुए हैं। उन्होंने मृत्यु का विवरण करते कहा,

यदि तुम मृत्यु को मित्र के रूप में लेना चाहते हो तो उसका स्वागत करने के लिए तैयार रहो। यदि मृत्यु को शत्रु के रूप में चाहते हो तो उसको जीवन की तैयारी करो।

उस मृत्यु से कोई लाभ नहीं जब यह एक अपरिचित व्यक्ति के समान आती है। यहाँ पर मृत्यु की पूर्वी और पश्चिमी विचारधारा में अंतर है। सेंट पॉल ने मृत्यु को मनुष्य का अंतिम शत्रु बयान करते हुए कहा कि वे प्रतिदिन मरते थे और मृत्यु को हड़पकर विजय प्राप्त करते थे, बल्कि एक दिन उन्होंने उसका मज़ाक उड़ाते हुए कहा कि, "ए मौत! तुम्हारा डंक कहाँ है?" पूर्व के महात्मा मृत्यु को परमात्मा से मिलने का अवसर कहकर उसका स्वागत करते हैं। दोनों ही विचारों में परिणाम एक ही है– जब मृत्यु उस समय हमारा फ़ायदा उठाती है। जब यह

अचानक और अकस्मात एक अपरिचित व्यक्ति के समान आए, जो न उस शत्रु के समान है जिससे हमारा घोर विरोघ है और जिस समय हम इसका स्वागत करने योग्य भी नहीं होते। न ही इसे लड़ाई करने की सामर्थ्य हमारे अंदर होती है। जो लोग इसका स्वागत रहने को तैयार होते हैं, वह सदैव तैयार रहते हैं वह इसका स्वागत ख़ुशी से करते हैं। यह सोचकर कि यह प्रभु के घर ले जाने और उससे हमारा मेल कराने का साधन है। कहा जाता है कि परमात्मा का भक्त जब मौत से भी ठुकराया जाता है, तो अपना सिर पत्थर पर ख़ुशी से रख देता है और यमराज को ख़ुशी–ख़ुशी बुलाता है कि वह आकर तलवार से मेरे शरीर के टुकड़े कर डाले। क्योंकि वह उसमें भी अपने प्यारे प्रीतम की ज्योति की झलक देखता है, आख़िर मौत है क्या?

इस बात को थोड़ा जान लेने के लिए कि मृत्यु के पश्चात् क्या होता है हमें धर्मग्रंथों में से देखना चाहिए। संत लोक मानव जाति को चार श्रेणियों में बाँटते हैं। पहली श्रेणी में वह लोग आते हैं जिनका भाग्य अच्छा नहीं और अभी तक किसी संत–सत्गुरु के चरणों में नहीं आए। इस प्रकार के लोगों की संख्या अधिक है। उन्हें अपने आप अकेले बिना किसी मित्र और साथी के जाना पड़ता है। ऐसे सभी जीवों को धर्मराय के सामने पेश होकर उसकी आज्ञा के अनुसार और उसके सिद्धांत के अनुसार, "जैसा बीजोगे वैसा काटोगे" के अनुसार पूरी तरह सख़्ती जीव के कर्मों का न्याय बिना किसी दया और सहानुभूति के करता है। यही कर्मों का कठोर सिद्धांत है जो कट्टरता तथा निर्दयतापूर्वक कार्य करता है। यह सिद्धांत किसी प्रकार के बाहरी वातावरण तथा अन्य अपवादों पर कोई ध्यान नहीं देता। गुरुवाणी में आता है कि,

> जाति जनमु नह पूछिऐ सच घरु लेहु बताय ।।
> सा जाति सा पति है जेहे करम कमाय ।।
>
> – आदि ग्रंथ (प्रभाती म.1, पृ.1330)

बाइबिल में आया है कि व्यक्ति की नज़र में प्रत्येक कार्य अपने दृष्टकोण से ठीक हो सकता है, लेकिन परमात्मा दिलों की तह को देखता है, निश्चित समय पर जिसका किसी से ज्ञान नहीं होता रामगण और यमगण जैसे जिसके कर्म होते हैं शरीर से आत्मा की ज़बरदस्ती निकालने के लिए आते हैं और जीव को उसके साथ जाना पड़ता है। यह जीव को धर्मराज के पास ले जाते हैं, जहाँ पर प्रत्येक को अपने विचारों, शब्दों और कर्मों को बयौरा देना होता है। अज्ञानी व्यक्ति

यह सोचकर कि कोई उनकी क्रियाओं को देखने वाला बचता नहीं। इसलिए वह समाप्त हो जाती है और दफ़ना दी जाती है, न कुछ मरता है, न कुछ मर सकता है। कार्लाइल का कहना है कि,

तुम्हारे मुँह से निकला एक–एक शब्द समय में दबाए एक बीज के समान है जो बाद में अपना फल देता है। ईसा ने कोई अनिश्चित शब्दों में ऐसा नहीं कहा कि मैं तुम्हें कहता हूँ कि तुम्हारे मुँह से निकले हुए बेकार के शब्द भी आख़िरी फ़ैसले के दिन हिसाब देते समय शामिल होंगे। अपने शब्दों के द्वारा ही तुम्हारा इंसाफ होगा, शब्दों के द्व ारा ही तुम निकाले जाओगे।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 12:36-37)

सभी विचार–भावनाएँ और मन के वेग सारे शब्द जो सोचकर या बिना सोचे कहे गए हैं और सारे कर्म जो पहले सोच–विचारकर या बिना सोचे किए गए हैं, मन पर पक्का प्रभाव या संसार छोड़ जाते हैं, जिनका हमें हिसाब देना पड़ता है। यह एक प्रकार का शुरू से अंत तक के कर्मों का विवरण है, पर बिल्कुल ठीक होता है जहाँ किसी को ऊँची ताक़त के साथ तर्क, बनावट और वक़ालत आदि करने के कोई गुंजाइश नहीं होती। और न ही वहाँ से किसी प्रकार का छुटकारा हो सकता है। जिसने सारी उम्र अपना जीवन पापों में व्यतीत किया है, उसको नरक में या दोज़ख़ में भेजा जाता है, जहाँ पर कर्मों के अनुसार उसको उतने समय तक क़ैद में रहना पड़ता है और उतने समय में वहाँ पर अपने को उन गंदे विचारों से हटाता है और इस सिद्धांत को समझता है, जिससे उसका अंत में भला हो सके। जब वह निश्चित समय समाप्त हो जाता है, वह पुनः फिर जन्म लेता है। यह उसको एक ओर अवसर दिया जाता है कि वह अब अपनी बुराइयों को हटाकर सुधरा हुआ जीवन बिता सके और पहले वाले कुकर्मों से जो गिरावट हुई थी, उससे बच सके। यदि कोई उचित प्रकार का जीवन बिताता है, तो उसे स्वर्ग या बहिश्त में स्थान प्राप्त होता है, जहाँ वह अपने किए अच्छे कर्मों का फल भोगता है, जिसके बाद वह फिर स्थूल जगत में जन्म लेता है।

इस प्रकार सभी व्यक्ति जीवन के कर्म–चक्र में बंधे अपने किए कर्मों के अनुसार ऊपर या नीचे की योनियों में चक्कर काटते हैं। सदा चलने वाले इस महाचक्र में से तब तक कोई छुटकारा नहीं, तब तक किसी का कोई संत–सत्गुरु

न मिले, फिर वह उसे स्वीकार करके उससे निकलने और परमात्मा की ओर जाने का रास्ता न बताए। प्लेटो के नीचे के जगत में से निकल आने पर आत्मा धीरे–धीरे जड़–पदार्थों की योनियों में से वनस्पति फिर कीड़े–मकौड़े, पक्षी, जानवर और अंत में मनुष्य योनि में प्रवेश करता है।

लख चउरासीह भ्रमतिआ, दुर्लभ जन्मु पाइ ओई ।।
नानक नामु समालि तू सो दिनु बेड़ा आइओई ।।
– आदि ग्रंथ (सिरीराग म.5, पृ.50)

यहाँ तक कि अनेकों देवी–देवता जो आनंद के मंडलों में शासन करते हैं, वहाँ इस कारण हैं क्योंकि उन्होंने निचले मंडलों में बहुत अच्छे कार्य किए। जैसे ही उनके सुकर्मों का फल समाप्त हो जाता है, उन्हें फिर इस भौतिक जगत में आना पड़ता है। सबके प्यारे श्रीकृष्ण एक बार ऊधो को, जो उनका अच्छा भक्त था गंदगी में एक कीड़े को रेंगते देखकर कर्म–चक्र की क्रिया को समझाते हैं कि "ऐ ऊधो! यह कीड़ा, जो तुम अपने सामने देखते हो, कई बार बिजली व वर्षा का देवता, इंद्र बन चुका है और कई बार इस बार की तरह गंदगी में रह चुका है। इसी प्रकार सभी की क़िस्मत कभी ऊँची और कभी नीची चलती है।

यहाँ तक कि अवतार और पैग़ंबर जो परमात्मा की शक्ति को धारण किए आते हैं वह भी कर्म–चक्र की क्रिया से बच नहीं सकते और उन्हें भी न्याय के लिए पेश होना पड़ता है। सेना में एक सिपाही की भांति अवतार भी उन मर्यादाओं से अलग नहीं होते। जैसे सिपाही जहाँ अपने कार्यक्षेत्र में अपने सैनिक नियमों से बंधे होते हैं, वहाँ शहर में रहते हुए उसे नागरिकता के नियमों का भी पालन करना पड़ता है। अगर वह अपने अफ़सरों की आज्ञा मानकर कार्य करता है, जो उसका सेना का नियम है, वहाँ दूसरी और उस पर नगर के नियम भी लागू करते हैं। उसकी दोहरी ज़िम्मेदारी होती है– एक तरफ़ सेना में अपने बड़ों की आज्ञा का पालन न करने पर उसको दंड मिलेगा और दूसरी तरफ़ नगर की शासन व्यवस्था के अंतर्गत नियमों के अनुसार यदि उसने अपने कर्तव्यों का पालन करने में अनुचित ढंग अपनाया है, तो उसे दंड मिलता है।

देवी–देवता और प्रभु की शक्तियों के अवतार कर्म–चक्र के सिद्धांत के अंतर्गत आते हैं। इतनी शक्ति मिलने के बावजूद वह और बाक़ी सभी संत कर्म–चक्र के द्वारा चलते हैं, उससे अलग नहीं। यही कारण है कि वह भी मानव शरीर में आना चाहते हैं, जहाँ आने से उनका जन्म–मरण से छुटकारा हो और

वह सदैव रहने वाली अपार शांति को प्राप्त कर सकें। यहाँ तक कि बड़े–बड़े ऋषि सारी तपस्या और व्रत आदि रखने पर भी, जब उनका अंत आता है, स्वर्ग के महल तथा ऊँचे मंडलों से मानव शरीर को अधिक महत्त्व देते हैं। यह इसलिए कि केवल इस मानव जीवन ही वह किसी सत्गुरु की शरण में आकर उससे शिक्षा प्राप्त करके, कर्म–चक्र के क्षेत्र से ऊपर उठ सकता है।

अर्जुन जैसा वीर और उसके भाई पांडव सभी को युधिष्ठर के अलावा, जो धर्मपुत्र कहलाता था, युद्ध करने के कारण नीचे के लोक नरक में जाना पड़ा– चाहे वह युद्ध, धर्मयुद्ध था। भगवान कृष्ण का बृहद हस्थ उसके ऊपर था, पर इतने पर भी वह कर्ता बनने का विचार मन से निकाल नहीं सका।

एक स्थान पर श्रीकृष्ण ने कहा है कि एक भील के द्वारा तीर लगने से उनकी मृत्यु उनके पिछले जन्म के कर्म का फल था, जिसमें वह राम थे और उन्होंने जंगल के वीर अजेय बालि को पेड़ के पीछे से छुपकर तीर मारा था। यहाँ पर यह बतला देना आवश्यक है कि राम और कृष्ण– दोनों विभिन्न समयों पर भगवान विष्णु के अवतार थे।

इसी प्रकार राम के पिता राजा दशरथ, जो एक दिन रात्रि में जुगल में शिकार कर रहे थे, गड़गड़ की आवाज़ सुनते ही यह सोचकर कि कोई जंगली जानवर पानी पी रहा है। आवाज़ के साथ उसी दिशा में उन्होंने तीर छोड़ा, जो श्रवण नामक एक नौजवान को लगा, जो नदी की तरफ़ घड़ा लेकर अपने अंधे माँ–बाप की प्यास बुझाने के लिए पानी लेने गया था, जिन्हें वह बांगी में कंधों पर उठाए चल रहा था और उस समय उन्हें पास ही छोड़कर आया था। नौजवान के तीर लगने पर दर्दनाक रोने–चिल्लाने की आवाज़ सुनकर राजा एकदम उस मरते व्यक्ति के पास भागा आया, जिसने अपनी सारी दर्दनाक कहानी राजा को सुनाई और उसे अपने अंधे माँ–बाप को पानी पिलाने को कहा। दुख से भरा राजा दोनों वृद्ध लोगों के पास पानी ले गया और उन्हें सारा हाल सुनाया। वह बड़ी कठिनाई से इस सारे दुख को सह सके और रोते–रोते मर गए, लेकिन मरते–मरते यह शाप उन्होंने राजा को दिया कि उसका भाग्य भी उनके जैसा बना, उसे वैसा ही दुख सहना पड़े। थोड़े समय बाद राजा को वही सब कुछ सहना पड़ा। जबकि अपने प्यारे बेटे राम को 14 साल का वनवास करने पर उसकी जुदाई में राजा ने तड़प–तड़पकर प्राण त्याग दिए। इस प्रकार कर्म–चक्र बारी–बारी से एक–दूसरे पर आते हैं और प्रत्येक को अपने किए अनुसार मरना

पड़ता है। इस प्रकार हर व्यक्ति इन सांसारिक कर्मों के अनुसार आता है और पूरा होने पर मृत्यु के द्वारा चला जाता है।

दूसरी श्रेणी में वह लोग आते हैं, जो किसी ज़िंदा संत–सत्गुरु की शरण में आते हैं, वह उन्हें स्वीकार करता है आत्मा के सिद्धांत की दीक्षा देता है पर किसी एक व एक कारण से वह पवित्र नाम के साथ संपर्क कुछ ऊँचाई तक नहीं बना सकते– चाहे यह विषय–भोगों में फँसने के कारण था– आलस्य के कारण या किसी अन्य कारण से हो। यह पहली श्रेणी वाले लोगों से भिन्न स्तर पर होते हैं। मृत्यु के समय जब आत्मा की धारा से शरीर छोड़ने लगती है या उससे थोड़ा पहले सत्गुरु अपने दिव्य स्वरूप में अंदर उसकी आत्मा को लेने आ जाता है। सत्गुरु का दिव्य स्वरूप शिष्य के हृदय को इतना आनंद देता है कि वह उसमें लीन हो जाता है कि संसार का मोह पतझड़ से पत्तों के समान गिर जाता है और वह निर्भय तथा आनंद के साथ सत्गरु के पीछे मृत्यु की अवस्था में जाता है। बाइबिल में आया है कि,

यद्यपि मैं मौत की परछाई वाली (मायाधारी) घाटी से चल रहा हूँ, मुझे कोई डर नहीं लगता, क्योंकि तुम मेरे साथ हो।

– पवित्र बाइबिल (भजन–संहिता 23:4)

यही वास्तव में उसका विश्वास है,

ऐ इंसान! समय पड़ने पर मैं तुम्हारे साथ जाऊँगा, तुम्हें रास्ता बताऊँगा और समय पड़ने पर तुम्हें साथ लेकर चलूँगा।

– पवित्र बाइबिल (इब्रानियों 13:5)

फिर कहा,

इस तरह जब तक यह दुनिया क़ायम है, तुम्हें कभी नही छोड़ूगा और न कभी भूलूँगा।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 28:20)

सत्गुरु शिष्य की प्रत्येक क्रिया पर पूरी देखभाल रखता है। वह उसके पास सुख और दुख में हर समय साथ होता है। गुरु नानक कहते हैं कि सत्गुरु अंतिम दिन फ़ैसले के समय भी धर्मराज के सामने खड़ा होता है।

सज्जन सेई नालि मैं चलदिया नालि चलन्हि ।।
जिथैद लेखा मंगीयै तिळौ खड़े दिसन्हि ।।

– आदि ग्रंथ (सूही म.1, पृ.729)

दरवेशों के सामने उनके शिष्यों के कर्मों का कोई हिसाब नहीं होता। शिष्य के कर्मों के हिसाब करने में सत्गुरु के पास पूरी ताक़त होती है और वही उसका निर्धारक होता है– चाहे वह कर्म सही हो या ग़लत हो लेकिन सत्गुरु अपनी इच्छानुसार जैसा ठीक समझना है, वैसा ही करता है।

सृष्टि की सारी रचना के जीवन का आधार परमात्मा के हाथ में होता है। इसलिए उसने अपने प्यारे पुत्र अर्थात पैग़ंबर को उस जीवन के देने की सत्ता दी होती है। उसके साथ ही उसे जीवों के कर्मों का फ़ैसला भी करने का हुक्म दिया होता है क्योंकि वह उसकी ख़ास औलाद है।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 5:26-27)

शिष्य की गुरु को कितनी चिंता होती है इसको गुरु नानक ने बड़े प्रभावशाली शब्दों में लिखा है :

सच्चा सतिगुरु सेवि सचु समालिआ ।।
अंति खलोआ आय जि सतिगुर अगै घालिआ ।।
पोहि न सकै जमकालु सचा रखावालिआ ।।
गुर साखी जोति जगाय दीवा बालिआ ।।
मनमुख विणु नावै कूड़िआर फिरहि बेतालिआ ।।
पसू मानस चंमि पलेटे अंदरहु कालिआ ।।

– आदि ग्रंथ (मलार की वार म.1, पृ.1284)

सत्गुरु को स्थान की दूरी कुछ प्रभाव नहीं डालती। अंतिम समय दूर या पास जहाँ कहीं भी शिष्य होता है। सत्गुरु की शक्ति अवश्य उस समय उसके पास होगी। सत्गुरु शिष्य को मृत्यु से पहले उसके मरने के समय की सूचना दे देता है और स्वयं उसी समय शिष्य के पास मौजूद हो जाता है उस समय सत्गुरु का सुंदर रूप, जो ज्योति ये प्रकाशित होता है, शिष्य की आत्मा को ऊपरी मंडलों में ले जाकर उस जगह बिठा देता है, जहाँ तक शिष्य ने अपने जीवनकाल में गुरु द्वारा दिए नाम की साधना करके अभ्यास किया है और फिर उसको रूहानी मार्ग पर आगे जाने तथा उसकी पूर्ण प्राप्ति करने का आदेश देकर वहाँ बिठा दिया

जाता है। बाइबिल में आता है कि,

मेरे पिता के घर में अनेकों मकान हैं। अगर ऐसा न होता तो मैं तुम्हें बतला देता क्योंकि मैं तुम्हारे लिए जगह बनाने जा रहा हूँ।

और अगर मैं तुम्हारे लिए जगह बनाने जाता हूँ, तो मैं दोबारा आकर वहाँ से तुम्हें साथ ले जाऊँगा, क्योंकि अंत में तुम्हें वहीं जाना है, जहाँ मैं रहता हूँ।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 14:2-3)

यदि किसी शिष्य को गुरु ने उसके आलस्य या कमियों को ठीक करने के लिए दंड देना है, वह उसका स्वयं निर्धारण करेगा कि किस प्रकार की सज़ा उसको दी जाए, लेकिन कभी भी शिष्य को नर्कों की आग में नहीं झोंकता। अंतिम दिन का फ़ैसला करने वाली सत्ता अर्थात धर्मराज जो मृत्युलोक का राजा है और सभी को उनके कर्मों के अनुसार दंड देता है उसका भी सत्गुरु के दीक्षित शिष्यों पर कोई अधिकार नहीं होता। क्योंकि वे उस,

महा–नाम में रहते हैं, जो परमात्मा की सत्ता है और उस नाम की महान शक्ति होती है।

– पवित्र बाइबिल (भजन–संहिता 18:10)

इन जीवों पर धर्मराज को किसी प्रकार का न्याय करने व उसे दंड देने का अधिकार नहीं होता। ऐसे मामलों में सत्गुरु स्वयं अपनी इच्छानुसार जैसा ठीक समझता है, वैसा फ़ैसला कर देता है।

सत्गुरु उन शिष्यों से ख़ुश होता है, जो उससे डरते हैं और उसकी दयामेहर का विश्वास रखते हैं।

– पवित्र बाइबिल (भजन–संहिता 147:11)

फिर लिखा है कि,

सत्गुरु जिसको प्यार करता है, उसकी कमियों को ठीक करता है, ग़लत काम करने पर सज़ा देता है और फिर उसको पूर्णतः स्वीकार करके स्वागत करता है।

– पवित्र बाइबिल (इब्रानियों 12:6)

सक्षेप में :

जिन्हा सतिगुरु सिउ चित लाइआ सू खाली कोई नाहिं।।
तिल जन की तलब न होवई न ओई दुख सहाहि।।

– आदि ग्रंथ (गूजरी की वार म.3, पृ.516)

लेकिन वह शिष्य जिनको संसार से कोई मोह नहीं, उनको फिर भौतिक जगत में जन्म नहीं लेना पड़ता। जब तक कि सत्गुरु किसी कारण से उनको वहाँ भेजना आवश्यक न समझे। ऐसा करने के लिए भी इस प्रकार के व्यक्ति को उससे नीचे स्तर पर नहीं जाना होता, बल्कि एक ऐसे परिवार में उसको जन्म दिया जाता है, जहाँ उसके माँ–बाप दोनों पवित्र और धार्मिक विचारों के हो जिससे वह बच्चा बचपन से ही संत–सत्गुरु की शरण में आ जाए और बहुत जल्दी जीवन में प्रभु की राह पर बिना किसी बाधा के चल पड़े। क्योंकि सत्गुरु का दिया 'नाम' का बीज कभी भी नष्ट नहीं होता। वह आत्मा के अंतर सदैव विद्यमान रहता है और समय मिलते वक़्त के ज़िंदा सत्गुरु से शिक्षा और जीवन आधार मिलने पर बढ़ता और फलता चला जाता है। गुरुवाणी में आता है कि सत्गुरु के दिए नाम के उपहार को कोई वापिस नहीं ले सकता, जिसने उसको दिया है वह इसे तैख़ाना भी जानता है :

गुरु की दात न मेरे कोई, जिसु बखसे तिसु तारे कोई।।

– आदि ग्रंथ (मारू म.1, पृ.1030)

स्वामी जी का कहना है कि जब एक बार नाम का बीज किसी सत्गुरु से मिलता है, तो किसी की मजाल नहीं कि वह उसका नाश कर सके।

संत डारिया बीज, घट धरती जिस जीव के,
को अस समरथ होय, जो जारे उस बीज को ।।

– सार बचन (बचन–38, बारहमासा, पूस)

फ़ारस के एक मुसलमान संत, हाफ़िज़ का का कहना है :

तुरा बरोज़े हिसाब ई अमर शवद मालूम,
कि बुवद सलतनते बे हिसाब दरवेशी ।

अर्थात, जब तेरा अन्त समय आयेगा, तब तुझे पता लगेगा कि दरवेशों (संतों) की सल्तनत में यमराज को हिसाब पूछने की ताक़त नहीं।

शम्स तबरेज़, फ़ारस के एक अन्य संत कहते हैं :

अजल क़फ़स शिकन्द मुर्ग़ रां ब्याज़ारद,
अजल कुजाओं परे मुर्गें जाविन्दा ज़ंकुजा।
चिरा बआलमे असलीए ख़ेश बा नखंग,
दिल अज़ कुजाओं तमाशाए ख़ाकदांज़ कुंजा।

अर्थात, मौत इस तन के पिंजरे को तोड़ कर रूह को आज़ाद कर देती है। कहाँ तो मृत्यु और कहाँ अनादि आत्मा! यह तन का पिंजरा फ़नाह है और काल की सम्पत्ति है। वह इसको सम्भालता फिरे, पर आत्मा अमर है, उसका इससे क्या काम ? अब मैं अपने वतन को क्यों न जाऊँ ? मेरी आत्मा कहाँ की और कहाँ यह मिट्टी का शरीर!

शम्स तबरेज़ फिर कहते हैं :

आशिक़ाने कि ब-खबर मीरन्द पेशे माशूक चूं शकर मौरन्द,
औलिया चश्मग़ैब बख़्शायन्द बाकियां जुमला कोरो कर मीरन्द,
आरफ़ा जानबे नई खन्द गाफ़िला ग़ारो बेख़बर मीरन्द,
व आंकि शबहा न ख़फ़्ता अन्दर बीमं जुमला बेख़ौफ़ी बेहज़्र मीरन्द,
व आंकि ईजा कि आं नज़र जुस्तन्द शादो ख़न्दा दरां नज़र मीरन्द ।

अर्थात, रब्ब के आशिक़ बा-ख़बर मरते हैं। उनको मौत की पहले से ही ख़बर होती है। वे अपने प्रीतम (मुर्शिद) के सामने मीठी मौत मरते हैं- वह उनकी आंतरिक आँखें खोल देता है। सत्गुरु-विहीन पुरुष अंधों की तरह मरते हैं। आरिफ़ (हक़ के ज्ञाता) मर कर अपने स्वामी की ओर रवाना होते हैं और मुर्शिद से ग़ाफ़िल लोगों की जान ख़्वार होकर बेख़बरी में निकलती है। जो मालिक के भय और याद में रात-रात भर नहीं सोये तथा अभ्यास में रहे, वे निडरता-पूर्वक हँसते-हँसते मुर्शिद के सम्मुख शरीर को छोड़ जाते हैं।

तीसरी श्रेणी के वह लोग हैं, जो काफ़ी हद तक गुरु की आज्ञानुसार चलते हैं, लेकिन अभी भी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सके, यद्यपि वह अपने मार्ग पर काफ़ी प्रगति से जा रहे हैं। ऐसे व्यक्तियों को अपने मरने का समय व दिन मौत पहले पता लग जाता है। क्योंकि उन्हें मृत्यु क्रिया का सही ज्ञान व अभ्यास होता है और वे प्रत्येक दिन इसका अनुभव करते हैं, इसलिए उन्हें मृत्यु से भय नहीं लगता और इसके भयभीत करने वाले तत्त्व को भली प्रकार जान लेते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि दूसरी ओर वह अंतिम समय की खुशी-खुशी अपनी इच्छा से प्रतीक्षा करते हैं और अपने आप उस फ़टे पुराने नाशवान चोले को ठीक उसी

तरह उतार फेंकते हैं, जैसे उन्होंने उसे इस संसार में आते समय धारण किया था। उन्हें आत्मा के कुछ एक ऊपरी मंडलों का ज्ञान होता है, जहाँ वह सत्गुरु की ताक़त से आए दिन आते जाते थे। मृत्यु के बाद उन्हें कहाँ जाना है, उस विशेष मंडल व स्थान का भी उनको पता चल जाता है। वहाँ वह कुछ समय रहते है और आत्मा की अधिक प्रगति करने के लिए वह और ज़्यादा मेहनत (प्रयत्न) करते हैं। वह सारा समय वहाँ गुरु के प्यार में बैठे रहते हैं और गुरु की शक्ति सदैव उनमें विद्यमान रहती है। वहाँ गुरु ही उनकी संभाल करने वाला होता है। किसी ओर से उनको वहाँ कोई सरोकार नहीं होता। आत्मा के द्वारा ऊपर उठने पर वह किसी भी दूसरे नियम व सिद्धांत से संचालित नहीं होते।

अंतिम श्रेणी में वह लोग आते हैं, जिन्हें पूर्णता प्राप्त होती है। वह अपने जीवनकाल में जीवित मुक्त होते हैं और आत्मा के पहलू से स्वतंत्र जीवन बिताते हैं। उन्हें अपने शरीर को कब छोड़ना है, परमात्मा के घर कब जाना है, इसका बहुत पहले से ही ज्ञान होता है। वह उस समय का तथा जिस प्रकार शरीर छोड़ना है, उसकी ख़ुशी से प्रतीक्षा करते हैं। चाहे सूली व फाँसी पर हो या अग्नि पर लोहे की लाल सलाखों पर हो या जल्लाद के हथियार से हो, इसकी परवाह नहीं करते। उनकी अपनी कोई इच्छा नहीं होती। वे तो केवल परमात्मा की इच्छा पर निर्भर रहते हैं। मृत्यु को परमात्मा से मिलन मानकर वह इसका स्वेच्छा से आलिंगन (स्वीकार) करते हैं। इस बात की वह बिल्कुल चिंता नहीं करते कि मृत्यु की क्रिया तेज़ी से चलेगी या देरी तक चलेगी। जैसा कि धर्म के विरोधी लोग और धर्म के तथाकथित शक्तिशाली ठेकेदार बड़ी निर्दयता से इन पवित्र और पूर्ण आत्माओं को मृत्यु का दंड देते हैं। परंतु इन लोगों के लिए यह अवसर भी बेहद ख़ुशी देने वाला होता है। उसके बाद वह जीवन का प्रत्येक क्षण कम करते चले जाते हैं। इस बात की चिंता नहीं करते कि उन्हें जिंदा मारा गया है या उनके शरीर को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटा गया है, उन्हें आग में जलाया गया है, ज़हर का प्याला पिलाया गया है या सूली पर क्रूरता से लटकाया गया है। वह तो मृत्यु का ख़ुशी से हाथ बढ़ाकर स्वागत करते हैं– चाहे वह किसी रूप में उन्हें लेने आए। इस रास्ते पर गुरुमुख संत और पैग़ंबर चलते हैं।

गुरु अमरदास जी के बारे में कहा जाता है कि जब उनकी मृत्यु का समय पास आया उन्होंने संगत को पास बुलाकर उपदेश दिया, "मैं हरि अर्थात मालिक के घर वापिस जा रहा हूँ।"

और उन्हें आज्ञा दी, "मेरे बाद मेरे लिए कोई न रोए, जो कोई ऐसा करेगा मेरी ख़ुशी के विरुद्ध चलेगा। जब मैं शरीर छोड़ दूँ, तो आप सब लोग ख़ामोशी से नाम अर्थात मालिक का अंतर से एक रस कीर्तन करना"

गुरुवाणी में आता है कि,

गुरु जाय हरि प्रभे पासि जीऊ ।।
सतिगुरि भाणै आपणै बहि परिवारु सदायआ ।।
मत मैं पिछै कोई रोवसी सो मै मूल न भायआ ।।
अंतै सतिगुरु बोलिआ मै पिछे कीरतनु करिअहु निरबाणु जीउ ।।
मत मै पिछै कोई रोवसी सो मूलि न भायआ ।।
अंते सतिगुरु बोलिआ मै पिछै कीरतनु करिअहु निरबाणु जीउ ।।
हरि भायआ सतिगुरु बोलिआ हरि मिलिआ पुरखु सुजाणु जीउ ।।

– आदि ग्रंथ (रामकली सदु, पृ.923)

इसी प्रकार शम्स तबरेज़ ने भी कहा है। उनके शब्दों में,

ब-रोज़े मर्ग चू ताबते मन ख्वां बाशद,
गुमां भवर कि मरा मैलेईं जहां बाशद,
जनाज़ां अम चू बीनी मगो फ़राक़ फ़राक़,
मरां बसालो मुलाक़ाते आंजमा बाशद,
दहां चूं बस्ती अज़ी कूं बंदा तुर्फ़ बक्शा,
कि हाय हुए तू दर हद्दे लामकां बाशद ।

अर्थात, मेरी मौत के दिन जिस समय मेरा जनाज़ा धीरे–धीरे निकले तब कभी यह ख़्याल मन में न लाना कि मेरे मन में दुनिया का विचार बाक़ी है। जब तुम मेरे कफ़न को देखों तो फ़राक़ फ़राक़ के नारे न लगाना क्योंकि उस समय तो मुझे मालिक के साथ विसाल हासिल होगा। जब यहाँ दुनिया से मुँह बंद होगा उसी समय दूसरी दुनिया की ओर खुलेगा। मेरा लामकान (मालिक के देश) में धूमधाम के साथ प्रवेश करेगा।

हुज़ूर महाराज जयमलसिंह जी महाराज ने अपनी मौत के समय से बहुत पहले ही बतला दिया था। जब वह संसार की अंतिम यात्रा के नज़दीक थे उन्होंने कहा था कि मैं अपने निजधाम जा रहा हूँ। मुझे और रुकने के लिए कोई न कहे। मेरा इस जीवन का काम पूरा हो चुका है और मैंने आत्मा का अनंत आध्यात्मिक भंडार प्राप्त कर लिया है। अब मैं ख़ुशी–ख़ुशी परमात्मा के घर जाता हूँ।"

संतों के जाने की ऐसी पुण्य घटनाओं को चित्रित करना एक ख़ुशी की बात है, क्योंकि इससे मालूम होता है कि वह कितनी ख़ुशी से अपने घर जाते हैं। कोई सांसारिक व्यक्ति कि मौत पर अगर चाहे, तो लगातार आँसू बहाए, क्योंकि मृत्यु लोक के राजा धर्मराज ने उसकी आत्मा को उसके शरीर से बलपूर्वक खेंचकर संसार से निकाला है। वह व्यक्ति ऊपर तथा नीचे की अनेक ग़लत क्रियाओं से निकलकर गया है, लेकिन कबीर साहिब कहते हैं :

कबीर संत मूआ किआ रोइए जो अपने ग्रिहि जाई,
रोवह साकत वापुरे जु हाटै हाटि बिकाई ।

संतों को जब उनका कार्य समाप्त होने पर बुलाया जाता है, तो उन्हें परमात्मा के दरबार में बड़ा आदर का स्थान दिया जाता है। ऐसी मौत से मरना बड़ी भारी बरक़त है और सौभाग्य से मिलती है, जिसको पाने के लिए महान से महान राजे–महाराजे तरसते और हसरत करते हैं।

m

5.

मृत्यु के पश्चात् क्या?

प्रभु ने जब कहा कि प्रकाश हो जाए, तो प्रकाश हो गया।

– पवित्र बाइबिल (उत्पत्ति 1:3)

और यही वास्तव में प्रकाश है, जो प्रत्येक व्यक्ति को इस संसार में आने के पश्चात् प्रकाशित करता है। ज्योति व्यक्ति का जीवन आधार है।

इस प्रकार के स्मरणीय शब्दों में सब धर्मग्रंथों ने संसार की रचना व उसकी मूल उत्पत्ति और जो कुछ संसार में है, उसका वर्णन किया है। ज्योति की किरणें जीवन के संगीत के साथ उस निराकार प्रभु से बनीं, जब उसने अपना साक्षात्कार इस संसार में अनेक रंग–रूप और आकार में किया।

जैसी ऊपर सृष्टि है, वैसी हो सृष्टि नीचे है। आत्मा और परमात्मा की सत्ता, जिसका साक्षात्कार दिव्य ज्योति की धारा के रूप में हुआ है, सृष्टि के सभी खंड–मंडलों में व्याप्त है।

(1) सचखंड : जो सत्य का घर है अथवा जहाँ स्थाई और अपरिवर्तनशील पवित्रता अपने निरोल रूप में है, जबकि भौतिकता का कारण (विशुद्ध मन) अर्थात पार–ब्रह्म भी उसके मध्य गुप्त रूप में है।

(2) ब्रह्मांड : अर्थात ब्रह्म का अंडा, सृष्टि का दूसरा बड़ा खंड है। ब्रह्मांड के पहले मंडल को परमात्मा की इच्छा से ब्रह्मांडी मन द्वारा तत्वों के सार से निर्मित किया गया। अगला मंडल, जिसको सूक्ष्म जगत कहते हैं, मन के तत्वों द्वारा सूक्ष्म अवस्था में बना है और अंतिम मंडल, पिंड या भौतिक जगत जो स्थूल मन के द्वारा निर्मित है।

इस संसार में शरीर के अंदर रहते हुए हम अपने भाग्य या क़िस्मत के द्वारा कार्य करते हैं, जो कि बहुत देखभाल तथा निश्चिता के साथ पूर्व निर्मित होती है, जिसको 'प्रारब्ध कर्म' कहते हैं। इसके द्वारा हमारे जीवन की प्रत्येक घटना, समय, क्रिया आदि की रूपरेखा बनी होती है। इस प्रकार यह खंड कर्मों का हिसाब, जो इन्हें उसका निपटारा करने का स्थान है, जहाँ हर एक को सदियों

से किए कर्मों का अपना–अपना हिसाब चुकाना पड़ता है। लेकिन ऐसा करते हुए हम जाने–अनजाने नए हिसाब खोल लेते हैं और कर्ज़ चढ़ा लेते हैं, जिस कर्ज़ का हमें लंबे अरसे के बाद हिसाब चुकाना पड़ता है। उसका किसी को भी मालूम नहीं कि वह भुगतान कैसे, कब और किस रूप व किस प्रकार से किया जाता है। इस प्रकार हम पिछले बोए कर्मों का फल पाते–पाते आगे के लिए कभी मौसम में और कभी बेमौसम में नए बीज बो डालते हैं, बिना देखे कि वह अच्छे हैं या बुरे हैं। यह सब कुछ हम बिना सोचे–समझे मन तथा इंद्रियों से प्रेरित होकर करते हैं।

साधुजन इस भौतिक जगत को 'कर्म क्षेत्र' कहते हैं या कर्मों का क्षेत्र, जहाँ उनका बोना और काटना हर समय कर्मों के अनुसार धर्मराज के निर्देशन, नियंत्रण तथा देखभाल में चलता रहता है। धर्मराज मृत्युलोक का राजा है, जो प्रत्येक व्यक्ति के पूरे जीवनकाल के हर एक विचार, शब्द और कर्म का– चाहे वह कितना छोटा और सूक्ष्म क्यों न हो– बड़े उचित और न्यायपूर्ण ढंग से इंसाफ़ करता है। गुरु नानक इस क्षेत्र को 'धर्म–खंड' कहते हैं, क्योंकि इस खंड में यात्री के रूप में आई हुई प्रत्येक आत्मा को पूर्ण बदले "बदले और परिणाम" के सिद्धांत को पूरी तरह समझना है। यह सिद्धांत सब पर समान रूप से बिना किसी भेद–भाव व अपवाद के लागू होता है। हर एक व्यक्ति अपनी क्रियाओं और कर्मों के बोझ से तोला जाता है और कभी–कभी बड़े भारी पिटाई, भारी चोटों आदि दंडों से ब्रहत की महान शिक्षा को सीखता है। ब्रह्मा तीन लोकों का मालिक है– स्थूल, सूक्ष्म और कारण अर्थात पिंड, अंड और ब्रह्मांड। यह तीनों लोक समस्त सृष्टि के मन से संचालित मन के घेरे में हैं, जिसके अंर्तगत अनेकों प्रकार की मिलावटों से बने अनगिनत नरक और स्वर्ग हैं तथा इनके साथ अनेक मध्यस्थ इलाके मनुष्य की इंद्रियों, प्रेरणाओं पसंदगी व न पसंदगियों, प्रेम व घृणा अहं व पूर्व विचारों आदि, जो सभी किसी एक व दूसरी इच्छाओं से निर्मित हैं। इस प्रकार हर व्यक्ति यहाँ ही नहीं यहाँ के बाद के लिए भी, शुरू से लेकर जितने जन्म उसने लिए हैं, उस सारे अरसे में समय–समय पर अपने विचारों को सूक्ष्म तथा मानसिक दुनिया में ले जाकर संचित करता रहता है।

यह सब कर्म करने वाले शरीर की तह में गुप्त रूप में आत्मा के ऊपर लटकती रहती है। इसका थोड़ा सा अंश दूसरे जन्म के समय ये पहले ही एक आवरण धारण कर लेती है। इसीलिए कहते हैं, "पहले बनी प्रारब्ध, पाछे बना शरीर," ताकि वह सब कर्मों को चक्र समाप्त हो।

जीवन भर के विचार जो मन पर गहराई से लिखे पड़े हैं। सारे जीवनकाल के मन को चलाने वाले वेग मृत्यु के समय पूरी तरह अपने–अपने रंगों में दिखलाई देते हैं और आत्मा के साथ जाकर यह निर्धारण करते हैं कि उनको देखते हुए आत्मा को सूक्ष्म व मानसिक किस जगत में रहना होगा। भौतिक शरीर से निकल आने पर प्रत्येक आत्मा अपना व्यक्तित्व प्रकाशित ठीक उसी प्रकार करती है, जैसा कि दोपहर के सूर्य की रोशनी में होता है। इंसान पवित्र चेहरा, पोशाक़ आदि धारण करके अपने आपको कितने ही समय तक धोखा दे सकता है। यह चीज़ें कुछ समय तक लोगों को भी धोखा दे सकती हैं, लेकिन सूक्ष्म जगत में जाने के बाद ऐसी दो रंगीं बातें संभव नहीं रहतीं, जहाँ इंसान के शरीर का बाहरी आवरण पूरी तरह से उतर जाता है।

गुरु नानक ने कहा है :

ਕਪੜੁ ਰੂਪੁ ਸੁਹਾਵਣਾ ਛਡਿ ਦੁਨੀਆ ਅੰਦਰਿ ਜਾਵਣਾ ॥
ਮੰਦਾ ਚੰਗਾ ਆਪਣਾ ਆਪੇ ਹੀ ਕੀਤਾ ਪਾਵਣਾ ॥
ਹੁਕਮ ਕੀਏ ਮਨਿ ਭਾਵਦੇ ਰਾਹਿ ਭੀੜੈ ਅਗੈ ਜਾਵਣਾ ॥
ਨੰਗਾ ਦੋਜਕਿ ਚਾਲਿਆ ਤਾ ਦਿਸੈ ਖਰਾ ਡਰਾਵਣਾ ॥
ਕਰਿ ਅਉਗਣ ਪਛੋਤਾਵਣਾ ॥

– आदि ग्रंथ (आसा की वार, पृ.470)

सूक्ष्म जगत आत्माओं का जगत है या यूँ कहें उस आत्मा को जिसने अपने शरीर के भौतिक आवरण को उतार दिया है, लेकिन अभी भी सूक्ष्म और मन के आवरण में ढकी हुई है।

इसको 'पितृ–लोक' भी कहते हैं अर्थात पितरों का स्थान, जहाँ मरे हुए पूर्वजों की पवित्र आत्माएँ रहती हैं। यहाँ आत्मा सूक्ष्म जगत के सात प्रकार के खंडों में बंद होती है और वहाँ स्थिति सात उपखंडों से अपना भौतिक तत्त्व प्राप्त करती हैं। यहाँ पर वह उन सब कारणों को कार्य में लाती हैं, जिनकी स्थूल जगत ने काम के लिए कुछ आत्मा की पवित्र क्रियाएँ करने के बाद भेजा जाता है, जिससे गंदगी समाप्त हो जाने के बाद उस भूमि पर प्रकाशित हो सके। श्रीमति ब्लावाट्स्की की शिष्या, श्रीमति एनी बेसैंट ने अपने प्रसिद्ध लेख, 'प्राचीन बुद्धि' में विभिन्न उप–मंडलों– जिनको वह 'काम–लोक' कहती हैं, जो सूक्ष्म जगत का निचला उप–खंड है, बड़ी सुंदरता से चित्रण किया है। जैसे कि नाम से मालूम होता है कि यह 'इच्छाओं का स्थान' है और उसमें सात उप–खंड हैं, जिसमें प्रत्येक में

विभिन्न स्वभाव और आदतों के लोग रहते हैं। समाज की गंदगी अधम से अधम, क़ातिल और लुटेरे, चंडाल और चरित्रहीन, गंदे स्वाद और जानवरों के समान भूखे लोग जब धरती पर रहते हैं। अपने लिए पशुओं वाले सूक्ष्म शरीर बना लेते हैं। अब मौत के बाद जंगली रूप में साधारण समानता और उनको क्रूर घर में नीचे के मंडलों में चिंघाड़ते, शिकार करके, क्रोध में डरावने से बनकर पहले की तरह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए घूमते–फिरते हैं। इन निराशा से भरे घृणित वातावरण में वह अपने बोए कर्मों का फल उठाते हैं और बड़ी आवश्यक शिक्षा प्राप्त करते हैं, जो वह अपने जीवनकाल में सीखना भूल गए थे, क्योंकि उस समय वह विषयों और इच्छाओं के ज्वारभाटे में चक्कर काट रहे थे। प्रकृति की शिक्षा बहुत कटु और तेज़ होती है। लेकिन लंबे अरसे में बचाने वाली होती है, क्योंकि आख़िर ऐसा उनके भले के लिए किया जाता है।

अगले (दूसरे) उप–खंड में वह जीव जाते हैं, जो शरीर छोड़ते समय किसी विशेष बात के कारण बड़े गंभीर और चिंतित होते हैं या जिनकी आत्म–मनोरंजन और आत्म–संतुष्टि की प्यास और इच्छाएँ अभी पूरी नहीं हुईं।

फिर दो उप–खंड (तीसरे और चौथे) पढ़े–लिखे और विचारशील लोगों के लिए होते हैं, जो इस संसार में अपने जीवनकाल में अधिकतर सांसारिक झंझटों में फँसे रहते हैं। उनका ध्यान आगे की तरफ़ होता है, न कि पीछे की तरफ़, क्योंकि वह प्रगतिशील लोगों में होते हैं।

पाँचवें उप–खंड से आगे वातावरण कुछ बदल जाता है और वास्तव में कुछ सूक्ष्म प्रकार का बनने लगता है अर्थात सचमुच सितारों से भरा– जैसे सितारे उसमें जकड़े होते हैं और वातावरण बहुत ज़्यादा आकर्षक होता है। इन तीनों उप–खंडों को स्वर्ग कहा जाता है— निचले प्रकार का स्वर्ग या कभी–कभी जिसको नरक कहते हैं, क्योंकि यह ऊपरी मंडलों में स्थित होने के बजाय निचले लोक नरक में स्थित है।

धार्मिक और दार्शनिक व्यक्ति भौतिक पदार्थों से युक्त स्वर्ग के पाँचवे खंड में स्थान प्राप्त करते हैं। संसार में रहकर अपने जीवनकाल में उनकी इच्छा और चाह इसी लोक की थी। यह स्थान शिकार का बड़ा सुंदर स्थान है, यहीं पर युद्ध में मौत पाए वीर और आकांक्षी पुरुष, मौत के बाद रहते हैं। यह आनंद से भरपूर मुसलमानों का बहिश्त और स्वर्ग है, ईसाइयों का सोने और हीरों से मढ़े दरवाज़ों वाला जेरुसलम है या आध्यात्मिक शिक्षाओं व उपदेशों से भरा स्वर्ग है।

जो जीव और अच्छे प्रकार के होते हैं– जैसे कि कलाकार उन्हें छठा उप–खंड प्राप्त होता है, जबकि सातवाँ सबसे ऊपरी उप–खंड केवल उन लोगों के लिए है, जो भौतिक बुद्धि में भरपूर हुए व्यक्ति होते हैं, जैसे कि राजनीतिज्ञ, शासक और वैज्ञानिक, जो कि भूमि पर पूर्णतया भौतिकवाद में रहते हैं और सांसारिक स्थान को प्राप्त करने का प्रत्येक ढंग अपनाते हैं।

'काम–लोक' में जीवन अधिक सजीव होता है, रूप अधिक अच्छा बनने योग्य होता है, फिर आत्मा का तत्त्व पवित्र व चेतन अंश को अधिक लिए हुए होता है। यह स्पर्श और देखने से दूर है– चाहे पूरी तरह से अंतर तक दिखता और चमकता है। यहाँ पर तेज़ी से विचारधाराएँ आती हैं और फिर छिप जाती हैं, जिस प्रकार एक शीशे के यंत्र में अनेक रंग आते हैं, घुस जाते हैं क्योंकि इंद्रियाँ, भावनाएँ तथा मनोवेग बड़े वेग से इनका उतार–चढ़ाव करती हैं।

बहुत अधिक ऊँचाई वाला आध्यात्मिक व्यक्ति ही 'काम–लोक' में से जल्दी गुज़र सकता है। यद्यपि पवित्र और सदाचारी अपने जीवन में बेरस हैं, इसमें से स्वप्न शांति से गुज़र सकते हैं। दूसरे जिनका जीवन दूसरे दर्जे का है, वह भी इतना तो चेतन रूप जानते हैं कि यह उसी क्षेत्र के समान है, जिसमें उन्होंने अपने जीवनकाल में कार्य किया था। वह लोग जिनकी पशु–वृत्ति अभी भी ज़ोरों पर छाए हुए है, जाग जाते हैं और यूँ कहें कि प्रत्येक जैसे–जैसे वातावरण में नीचे रहा है– जैसे कर्म किए हैं– वैसा ही स्थान पाता है।

यह खंड माया के धोखों और चालों से भरा है। इसलिए उन लोगों को भी, जो किसी जीवित पूर्ण संत से दीक्षित होने पर, परे के रूहानी मंडलों में जाते हैं, उन्हें इन मंडलों में जाने से मना किया जाता है कि कभी वह भी माया के धोखों में न फँस जाएँ। इसके विपरीत इन दृश्यों को पर्दे में रखकर अर्थात उन्हें बिना दिखाए, इन मंडलों से उन्हें जल्दी से निकाला जाता है, जिससे वह ऊपर के मंडल में अधिक स्थात्त्वि और प्रगति कर सके ताकि बाद में वह इस योग्य हो जाए कि इसी क्षेत्र को बड़े धैर्य और निर्भयता के साथ इन माया के धोखों और बनावटों के होते हुए पार करके ऊपरी मंडलों में पहुँच सकें।

इच्छाओं के सूक्ष्म जगत से कुछ जीव दूसरे जगत में प्रवेश करते हैं, जो विचारों का संसार होता है। यह मनमयी सृष्टि है, जिसका मन की विचार शक्ति से निर्माण होता है। विचारों में अथाह शक्ति होती है और प्रत्येक व्यक्ति इस पृथ्वी पर रहते हुए अपने विचारों व ख़्यालों की दौड़ से एक अपना–अपना संसार बना

लेता है और इस संसार में जो कि 'हवा–महल' बनाने के समान है, मृत्यु के बाद जीव को इसका अनुभव प्राप्त करना पड़ता है।

परमात्मा के निरोल पवित्र तत्त्व से बनी सारी सृष्टि के ब्रह्म के मन से लेकर नीचे स्तर पर व्यक्ति के मन तक, हर अवस्था में मन अपना विचारों का एक संसार बना लेता है और जैसे एक मकड़ी अपने बनाए जाले में रहकर बड़ी खुशी से ऊपर–नीचे, दाएँ–बाएँ चलती है, उसी प्रकार मन अपने विचारों के बनाए सुंदर और पतले जाल में, जो मकड़ी के समान कलात्मक रूप से बना है, जिसमें शरीर से प्राप्त तत्त्व पतले आवरण को धारण किए हुए हैं, रहकर बड़ा प्रसन्न होता है। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के विचार और विचारधाराएँ, कल्पनाएँ शरीर से बाहर निकलकर विचारों का एक अद्‌भुत राज्य स्थापित कर देती हैं और यह सब उस विचारशील व्यक्ति के इस भौतिक जगत के क़ैदखाने से शरीर छोड़ने से बहुत पहले हो जाता है।

'जैसा सोचोगे वैसा बनोगे,' यह प्रकृति का सिद्धांत है, जिसके घेरे से कोई नहीं बच सकता। विचारों की इस दुनिया में, आत्मा से आत्मा तक संपर्क देने का माध्यम विचारधाराएँ हैं और सभी आत्माएँ एक–दूसरे के घनिष्ठ संपर्क में रहती हैं। वहाँ समय तथा दूरी का कोई महत्त्व नहीं। यदि कभी उनमें किसी का संबंध हटता है, तो वह किसी और कारण से नहीं बल्कि इस कारण से कि उनमें आपस में सहानुभूति नहीं रही। वहाँ जीवन अपने में सर्वशक्तिमान है। यहाँ जीवन और खंडों की अपेक्षा अधिक बलवान, पूर्ण तथा प्रगतिशील होता है। लेकिन यह कपट से भरा होता है, क्योंकि यह प्रत्येक व्यक्ति के मन से प्ररित होता है और जैसा हम जानते हैं कि कोई व्यक्ति मन धोखों से अलग नहीं रह सकता– चाहे प्रत्येक अपने मन के बनाए स्वर्ग–जगत में पूर्ण रूप से प्रसन्न होता है– चाहे वह विस्तृत और बढ़ रहा हो व संकुचित और सीमित हो।

लेकिन वातावरण के इतने धोखों और बनावटों में घिरे होने पर भी प्रत्येक अपनी वास्तविकता से जागरूक होता है।

मन के जगत का विशेष स्थान 'देव–लोक' है, जहाँ देवता वह व्यक्ति जो अपने समय में बहुत प्रगतिशील व जागृत थे उनके रहने का स्थान है यहाँ हिंदुओं का स्वर्ग और बैकुंठ है, कुछ लोगों का 'सुख–वाटि' ज़रथुश्तियों तथा ईसाइओं का स्वर्ग, भौतिक संसार में कम लीन रहने वाले मुसलमानों का 'अर्श', बाद में आने वाले ज्यूज़ लोगों का आनंद देने वाला व महाशक्ति वाला स्वर्ग है। यहीं

पर एडेन (हव्वा) का वह बाग़ है, जहाँ से परमात्मा ने मनुष्य को उसका कहना न मानने के कारण नीचे निकाल दिया था। यूहन्ना मिल्टन, जो अपने समय का महाकवि, उत्तम पुरुष एक उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ तथा आध्यात्मिक विचार वाला व्यक्ति हुआ है, अपनी अमर रहने वाली रचनाओं– जैसे कि 'पॅराडाइज़ लॉस्ट' और पॅराडाइज़ रीगेन्ड' में व्यक्ति की गिरावट और उसके पुनः अच्छा बनने तथा किसी महापुरुष के द्वारा जिसमें प्रभु की सत्ता विद्यमान है, परमात्मा से मिलने का सुंदर और अद्‌भुत वर्णन किया है।

विभिन्न धर्मों का अध्ययन करने से पहले जिनमें मनुष्य के नश्वर शरीर से ऊपर की यात्रा के अनेकों पहलुओं का वर्णन है, यह अच्छा होगा कि हम फिर ब्रह्म–विद्या या आत्मिक बुद्धि का वर्णन करें, जिसको ग्रीक (यूनानी) लोगों ने 'थियोसोफ़िया' कहकर बयान किया है, जिसमें पूर्व और पश्चिम दोनों की विचारधाराओं का मिश्रण है। श्रीमति एनी बेसैंट के गूढ़ रहस्यों पर एक बार फिर दृष्टिपात करने से हमें मालूम होता है कि मनुष्य जब शरीर के स्थूल व सूक्ष्म आवरणों को उतार डालता है, तो वह मन के बनाए खंड में निवास करता है। पशुओं के समान विषयों के स्वार्थपूर्ण रस में लीन, प्रत्येक व्यक्ति को अपने अच्छे कर्मों का फल चुकाने के लिए आना पड़ता है। इन अच्छे विचारों की संख्या कम या अधिक उसके अपने विचारों, प्रेरणाओं, अभिलाषाओं, आशाओं, भय, प्रेम और इच्छाओं आदि से होती है। हम जैसे हैं, उससे अधिक हमको नहीं मिलता। हमारे कर्मों के अनुसार ही हमें फल मिलता है।

धोखे में न रहो, परमात्मा को धोखा नहीं दे सकते
क्योंकि जैसा तुम बीजोगे वैसा ही तुम्हें काटना होगा।

– पवित्र बाइबिल (गलातियों 6:7)

यह सृष्टि का सुंदर सिद्धांत है, जो दया से भरा न्याय करता है और हर एक को इस संसार में उसके किए कर्मों के अनुसार मज़दूरी व फल देता है। हर प्रकार का विचार, हर अभिलाषा, जिसको पूरा करने का कार्य हुआ, निराशा से भरपूर प्रयत्न जो मन की शक्ति, संघर्ष और पराजय में परिवर्तित हुए और शक्ति तथा बल के स्तंभ बने, दुख तथा ग़लतियाँ, जो प्रकाशवान पहनावा पहने हैं, इन सात उप–खंडों या स्वर्गों में से किसी एक में अपना फल भोगती, जो आर्ध–रात्रि के सूर्य वाले देश में हैं, यहाँ आत्मा की चेतनता जागृत होती है और व्यक्ति को अपने आस–पास के उस वातावरण से जागरूक कराती है, जिसमें

आत्मा का अंश नहीं है, यहाँ उसे संसार में किए पिछले कर्मों की याद आती है और मालूम होता है कि किन कारणों से दुनिया में उसका ऐसा जीवन बना और उन कारणों का भी मालूम होता है, जो कि आगे आने वाले कितने ही समय तक उसको भुगतान हैं। अब उसको अपना अतीत, वर्तमान और भविष्य एक खुली पुस्तक के समान जीवन का समन्वय रूप प्रकट होता है, जिसमें से कुछ गुप्त है और अदृष्य नहीं है। यहाँ पर उसकी वह आँख बनती है, जिससे सब कुछ देखा जा सकता है। अब वह अपने बारे में सही रूप में पूर्ण जानकारी पाने योग्य हो जाता है।

इस स्वर्ग–लोक के निचले भाग में कम विकसित जीवों को रखा जाता है, जिनका अपने परिवारों और परिवारजनों के साथ सच्चा और निःस्वार्थ प्रेम होता है और जो अपने से दूसरे विवेकशील, पवित्र और उत्तम पुरुषों की अधिक प्रशंसा करते हैं। इसलिए उनका परिणाम कर्मों के अनुसार संकीर्ण या थोड़ा होता है, उनकी ग्रहण करने की शक्ति का वर्त्तन छोटा होता है, लेकिन फिर भी वह खुशी, पवित्रता, माधुर्य आदि से ऊपर भरे होते हैं और ऐसे लोग थोड़े समय बाद इसी मंडल पर पुनः जन्म लेते हैं, परंतु इस बार उनकी शक्ति और गुण पहले से अच्छे दिए जाते हैं।

फिर धार्मिक प्रवृत्ति के नर और नारी आते हैं जिनका मन तथा मस्तिष्क दोनों ही प्रभु की राह पर होता है– पर उनका परमात्मा अपनी पसंद का होता है– चाहे वह किसी नाम व रूप का हो, उनका उनमें पूर्ण विश्वास होता है और उनको वह निराकार प्रभु उस ही रूप में देखता है जिसकी वह प्रेमपूर्वक भक्ति करते हैं। उसी भक्ति में उनको अत्यंत नशा और मस्ती उनके मन तथा भावनाओं के अनुसार आती है। वह परमात्मा अपने को उस रूप में प्रकट करता है, जिसमें उसका भक्त उसको याद करता है। वास्तव में यह कितने आश्चर्य की बात है कि मनुष्य भूल जाते है कि सारे देवी–देवता मनुष्य के हृदय में निवास करते हैं। उस निराकार परमात्मा की (उस रूप में) झलक लेने के लिए, जिसकी हम पूजा करते हैं, हमें केवल अंतर्मुख होना होता है। इसीलिए कहा गया है कि,

बनामे ऊ के ऊ नामे नदारद,
बहर नामे कि ख्वानी सर बरारद ।

अर्थात, वह आकार रहित है फिर भी सब रूप उसी के हैं, वह नाम रहित है फिर भी सभी नाम उसी के हैं, तुम जिस नाम से चाहो उसे पुकार लो और वह प्रकट हो जाएगा।

तीसरे मंडल में भक्त और अनुरागी जीव आते हैं, जो मनुष्य में परमात्मा को देखते हैं और उसी में उसकी सेवा करते हैं अर्थात जो प्रभु की पूजा उसकी बनाई सारी सृष्टि में करते हैं। इस स्थान पर वह उस समय के बड़े दानी बताए जाते हैं, लेकिन उनको जन्म नहीं दिया जाता और उनमें मानव जाति के प्रति निःस्वार्थ प्रेम की अपार शक्ति संचारित की जाती है।

जो जीव उच्चतम कलाओं में जैसे संगीत, शिल्प तथा कला में निपुण होते हैं या प्रकृति के नियमों का अनुसंधान व खोज करते हैं, ज्ञान की तह तक जाने वाले परिश्रमी और साधना वाले विद्यार्थी चौथे उप–मंडल में जाने का अवसर प्राप्त करते हैं, जिससे आने वाले समय में वह मानव जाति के पूर्ण अध्यापक बन सकें, अब जब वह आते हैं तो मार्गदर्शक का कार्य करते हैं और अपने चिरस्मरणीय कार्य समय के साथ छोड़ जाते हैं।

इसके आगे उच्च कोटि के तीन आकार रहित स्वर्ग हैं। बड़ी संख्या में जीव इतनी निचाई तक ही पहुँच पाते हैं। थोड़ा समय वहाँ रुकते हैं, अपने कर्मों के अनुसार अंतर थोड़ी ज्योति का विकास होता है, तब वह फिर उस अपरिचित संसार में गोते खाते लौट आते हैं। लेकिन जो जीव गंभीर और सदाचारी विचारधारा के हैं, शीघ्र ही उचित प्रकार से सत्य को देख लेते हैं, मूल कारण उनकी तह काम कर लेने वाली एकता को देख लेते हैं और आत्मा के नियम की सदा रहने वाली अपरिवर्तनशील क्रिया को सीख लेते हैं। जो इस तह पर अशिक्षित जीव को अत्यंत अनुचित प्रभाव दिखाई देता है और जहाँ जैसे पोप ने कहा है, "यद्यपि सब वस्तुएँ भिन्न हैं, परंतु सभी एक हैं।"

अटूट विश्वास और पूरी स्मरणशक्ति वाले प्रगतिशील जीव छटे उप–खंड के भंडारों की खोज करके मानव जाति को आगे बढ़ाने, परमात्मा के रास्तों का ज्ञान उसको देने और ईश्वर की शोभा को बढ़ाने के लिए यहाँ आते हैं। चिरकाल से मरे लोगों को यहाँ पर सुंदर जीवन बिताने का रस मिलता है– जैसे कि वह यहाँ ब्रह्मा की इच्छा को पूर्णता में कार्य करते देखते हैं, जहाँ कारणों की कड़ी के मध्य में किसी प्रकार का कोई संबंध नहीं है।

सबसे ऊँचे उप–मंडल में ब्रह्म विद्या के निपुण जीव और उनके दीक्षित ब्रह्मचारी आते है, क्योंकि दीक्षित लोगों के अलावा यह तंग और वज्र कपाट किसी को नहीं मिलता। यह द्वार जीवन–अधार की ओर ले जाता है इसलिए केवल थोड़े से चुने हुए लोग ब्रह्म की भूमि और उसके जीवन में प्रवेश करते हैं। यह

लोग आत्म–चेतनता से उच्चतम स्तर की प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। लेकिन अभी तक महा चेतनता को नहीं पा सके।

अंत में श्रीमति एनी बेसेंट इस प्रकार समस्त स्थिति का सारांश देती है। इस प्रकार की सात स्वर्गों की रूपरेखा है। मनुष्य परिवर्तन मृत्यु को पाने के पश्चात् इन्हीं में एक व दूसरे में प्रवेश करता है, क्योंकि मृत्यु एक प्रकार का परिवर्तन है, जो जीव को उसके अत्यंत भारी बंधनों से हटाकर आंशिक मोक्ष देती है। यह तो एक प्रकार से विस्तृत जीवन में जन्म है, संसार में थोड़ा समय क़ैद रहने के बाद जीव को अपने सच्चे घर में वापिस जाना है। क़ैदख़ाने से निकलकर ऊपर की ताज़ी हवा लेने के समान है। संसार में मृत्यु सबसे बड़ा भ्रम है। कोई मरता नहीं– केवल जीवन की परिस्थितियों में परिवर्तन है। जीवन तो निरंतर चलता है, न कभी टूटता है, न कभी टूट सकता है। यह कभी जन्मता नहीं, अविनाशी और स्थाई है। यह शरीर रूपी आवरण के नाश होने पर जीवन नष्ट नहीं होता। जब बर्तन टूटता है, हम तो यह भी कह सकते हैं कि आसमान गिर रहा है– जैसे यह सोच लेना कि शरीर के नाश होने पर आत्मा भी नाश हो जाती है।

मृत्यु के बाद मनुष्य की दौड़– स्थूल, सूक्ष्म और मानसिक– इन तीनों लोकों से समाप्त नहीं हो जाती। स्थूल आवरण से मुक्त होने के बाद जीव ब्रह्म के महान जीवन चक्र में अपने विचारों, शब्दों और क्रियाओं के कारण ऊपर–नीचे स्थान प्राप्त करते हैं। यह सारा व्यक्ति के अपनी महान विचार शक्ति के क्षेत्र के कारण होता है। इस क्षेत्र का विस्तार नीचे के स्थूल से आरंभ होकर मनोमय संसारों तक तक चलता है, जहाँ वह मृत्यु के बाद अस्थाई रूप से लंबे व छोटे अरसे के रहने का स्थान ब्रह्म की शिक्षा की आवश्यकता को देखते हुए बनाता है। जैसे ही वह पूर्णता को प्राप्त करने की राह पर अग्रसर होता है। इससे पहले कि उसे चलाने वाले कारण बाहरी शक्ति की प्ररेणा से प्रेरित इन तीन अग्रलिखित संसारों के विभिन्न मंडलों को उसके वातावरण से उदय होकर कार्य करते हैं। प्रत्येक जीव अधिक से अधिक फल इकट्ठा करने का प्रयत्न करता है।

मानवीय आत्मा का कारण या बीज शरीर, जो सबके अंतर स्थित है, के आगे अभी बड़े सूक्ष्म और पतली झिल्ली वाले निचले दर्जे की ग्राह्य शक्ति से युक्त बौद्धिक (वैज्ञानिक) और निर्वाणिक (आनन्दिक) नामक दो मंडल स्थित है। केवल बहादुर आत्मा ही, जो वास्तव में राजकुमार सिद्धार्थ के समान दृढ़ हो, वही बुद्धि की ओर बढ़कर जागृत बने और सदैव के तीनों सृष्टियों के रचयिता

की प्रसन्न्ता को प्राप्त करें। फिर भौतिक जगत में सिद्धांत विशेषतया धर्म का सिद्धांत देने के लिए आवश्यकता को कम से कम करने पर महत्त्व डालने का उपदेश दें, जिससे मन सभी विषयों से अलग होता जाए और तब जीव पूर्णता की ओर ले जाने वाले सत्यता के अष्ट मार्ग दर चल पड़े। फिर जैन तीर्थंकार, महावीर, वीरों में वीर, जो ब्रह्म के सिंहासन तक पहुँच सके और जिन्होंने समस्त संसार को सर्वव्यापी प्रेम और अहिंसा का सिद्धांत, छोटे से छोटे कीड़े से लेकर सृष्टि के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करना– चाहे वह बुरी प्रकार से मिट्टी पानी में रेंग रहा हो या हवा में बेअख़्त्यार बहुत मात्रा में– अपने–अपने क्षेत्र में अदृष्य रूप में उड़ रहे हो।

बौद्धिक क्षेत्र में व्यक्ति अपने में आत्मा के ज्ञान को बुद्धि के पहलू से विकसित करता है और अपने अंतर उसी प्रकार की आत्मा को देखने और अनुभव करने लग जाता है। और वह उसी प्रकार जीवन की मूल एकता को, जिसे 'सूत्रात्मा' कहते हैं, प्राप्त करता है, जो एक चींटी से लेकर हाथी में माला के अनेकों मनकों के समान पूरी हुई है– चाहे उनके बाहरी या अंदरूनी रंग, रूप, आकार में जलवायु की विभिन्नता, मानसिक विकास तथा अंतरी विकास तथा प्रगति के कारण अंतर होता है। अब मानव तत्त्व, जो ब्रह्म के जीवन से दैवी सत्ता और गुणों द्वारा संचारित है और अपने में आत्मा का अनंत आनंद प्राप्त करने की इच्छा रखता है, सत–चित्त आनंद की आत्मिक तथा निर्वानिक चेतनता जो सृष्टि या हृदय और आत्मा है और अब तो उसी की बन जाती है, वह उसमें एक अर्थात लीन हो जाती है।

ब्रह्म–विद्या को समझने की क्रिया वास्तव में एक लंबी और थकाने वाली क्रिया है और फिर इसका सफलता से अभ्यास करके, एक–एक करके एक से दूसरे मंडल में से गुज़रते जाना, मोटे प्रकार के तत्त्वों से बने भौतिक जगत से ख़ास ब्रह्मलोक में जाना, जहाँ महा–माया अपने बड़े सुंदर और सूक्ष्म रूप में राज्य करती है। ब्रह्मांड परमात्मा की शक्ति का साक्षात्कार है, जो 'ॐ' में स्थित है, जो वैदिक ज्ञान में बड़ी पवित्रता का द्योतक है। इस प्रकार यह ओम का आकार या रूप है। यह ग्रीस वालों का जीवन–आधार है और विभिन्न धर्मों का 'ओंकार' है।

वेदांत के अनुसार यह मानवीय सफलता या अंतिम उद्देश्य है। जिसकी बाद में आने वाले वैदिक शिक्षकों और ऋषियों ने पहाड़ों की बर्फ़ीली चोटियों पर और

जंगलों के बीच में अटूट समाधियों में बैठकर अनुभव प्राप्त करने के पश्चात इस गूढ़ रहस्य की शिक्षा दी। ब्रह्मा सृष्टि का जीवन–आधार है, जिसके अंतर ऊपर वर्णित तीन लोक विद्यमान हैं, जिनमें से हर एक में त्रिलोकीनाथ पूर्ण जीवन के तीनों पहलुओं का मालिक रहता है। उनके विवेक से भरे हीरे से अमूल्य वचन हम उनके अनमोल कार्य उपनिषद् में परमात्मा की पवित्र किरणों के रूप में पाते हैं, जो सही रूप में वेदांत अर्थात् वेदों की अंतिम सीढ़ी व अंश है, जो आत्मिक ज्ञान की सुगंध है, जो महावाक्य अर्थात महान सत्य से समाप्त होता है। 'तुम वही हो,' अर्थात कि मानव तुम उसके वास्तविक रूप और स्वभाव में ब्रह्म हो और जब कोई इस मूलभूत सत्य को जान जाता है, वह अपने आप कह उठता है "अहम् ब्रह्मः अस्मि" अर्थात "मैं ही ब्रह्म हूँ" या,

मैं और मेरा पिता एक ही हैं।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 10:30)

या,

मैं आप में कुछ नहीं बोलता, बल्कि जैसा मेरा पिता मुझसे करवाता है।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 8:28)

या, जैसा गुरुवाणी में कहा है :

जैसी मैं आवै खसम की बाणी तैसड़ा करी गिआनु वे लालो ।

– आदि ग्रंथ (तिलंग म.1, पृ.722)

वेदांत से जो सबसे बड़ी शिक्षा हम प्राप्त करते हैं– वह है कि हम सब एक हैं, हमारा आदि एक है, हमारी अंतरी और बाहरी बनावट एक है, हमारे में एक से गुण और शक्ति विद्यमान है– चाहे वह कितनी भी प्रकट और गुप्त रूप में क्यों न हो। परंतु उसे विकसित करने की जल्दी व देर से एक सी सामर्थ्य है और आत्मा के विकास की या मोक्ष की क्रिया सभी के लिए एक समान है। फिर सारी मानव जाति का एक उद्देश्य है, क्योंकि हम सभी उस ब्रह्म के पुजारी हैं। इस प्रकार व्यक्ति के मरते समय जो जीवन शरीर से बाहर निकल जाता है, वह महा–मन या महत् अर्थात आकाश के महामन के जीवन में प्रवेश कर जाता है, जिसको 'तीसरा सिद्धांत' ('Third Logos') या 'रचना करने की आत्मिक बुद्धि',

हिंदुओं का 'ब्रह्म', बौद्धी लोगों का 'मन्जुश्री', ईसाइयों की 'पवित्र आत्मा' और सूफ़ी और योगी दरवेशों का 'अल्लाह–हू' है।

यहाँ ब्रह्मलोक में जीव ब्रह्म के साथ निकट घनिष्ठता में उसकी सत्ता को प्रेम, विवेक और आनंद प्राप्त करते हुए बहुत समय तक जीवित रहते हैं। फिर यहाँ पर इतनी देर तक ठहरना होता है कि व्यक्ति यह विश्वास करने और कहने लगता है कि यह एक मोक्ष है, 'ज्योति पुनः ज्योति में समा रही है। लेकिन यह ठहरना यहाँ कितना भी लंबा क्यों न हो अनन्त नहीं है। यह उसी समय तक है, जब तक ब्रह्मांड प्रलय में समाप्त नहीं हो जाती और सर्वव्यापी महामन अपने जीवन का अंत नहीं कर देता, जब तक उन सभी आत्माओं को जो उनके घेरे में आती हैं और कहीं भी उस समय हैं, समाप्त नहीं कर देता। यह जीवन प्रदान करने तथा जीवन को समाप्त करने का नाटक ब्रह्मांड में निरंतर चलता ही रहता है। यही सारी सृष्टि में चलता रहता है।

आत्मा का सिद्धांत इसको बड़ी सुंदरता से बतलाता है :

दिव्य दर्शन कितना लुभावना है!
न यह कटु है, न ही जटिल– जैसा कि मूर्ख मान लेते हैं,
परन्तु अपोलो की बाँसुरी सा सुरीला
और अमृत–मिष्ठान का शाश्वत भोज।

– जॉन मिल्टन

ब्रह्म में ब्रह्मा, विष्णु, शिव की तीनों शक्तियों का समावेश है अर्थात उत्पत्ति की पालने की तथा नाश करने की शक्ति किसी न किसी रूप में कार्य करती है। यह तीनों शक्तियाँ उस प्रभु की अपार शक्ति या सृष्टि की जननी महा–माया के द्वारा उदय होती हैं। यह किसी स्त्री के जन्म में जैसे हम समझते हैं, नहीं होती। एक बार पुनः हम मकड़ी के जाले की पतली झिल्ली का उदाहरण लेते हैं या रेशम के कीड़े द्वारा जो रेशमी जाला काता जाता है, ताकि इनका जीवन सुरक्षित रहे, जबकि हम कुछ समय के अंदर अपने नग्न शरीर को ढकने के लिए अनेक प्रकार के नमूने तथा रंग वाले कपड़े सिलते हैं और इन मांगे हुए कपड़ों में सीमित रहकर अपार प्रसन्नता को प्राप्त करते हैं।

गुरु नानक ने सृष्टि में परमात्मा की कार्य करने की क्रिया को बतलाते हुए एक त्रि–सिद्धांत का वर्णन किया, जो उत्पत्ति, पालन और विनाश की तीनों

शक्तियों से संबंधित है, जो सभी परमात्मा की महान इच्छानुसार एक मंत्री के समान कार्य करती हैं, केवल कभी–कभी अधिक शक्ति का प्रयोग कर लेती हैं। और आश्चर्य की बात यह है कि इन सबके होने पर भी उनको प्रभु की जानकारी नहीं दी जाती, क्योंकि वह तो केवल बाह्य सृष्टि के अंग हैं और परमात्मा सबसे ऊँचा और अंतर में है। वह आकार रहित है।

> एका माई जुगति विआई चेले परवाणु ।।
> इकु संसारी इके भंडारी इके लाये दीवाणु ।।
> जिव तिस भावै जिवै चलावै जिव होवै फरमाणु ।।
> उहु वेखै एना नदरि न आवै इहुता एह विडाणु ।।
> आदेसु तिसै आदेसु ।।
> आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुबु एकौ वेसु ।।
>
> – आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 29, पृ.6)

सृष्टि में जो महान और कठोर कार्य इन तीनों संसारों को चलाने से संबंधित हैं, जिसमें सभी प्रकार के नरक और स्वर्ग स्थित हैं, ब्रह्म का दूसरा सहयोगी विष्णु महा–त्रिमूति में शासन की सत्ता को कार्य में लाता है। यह प्रश्न करने पर कि "वह विष्णु किस प्रकार इतने बड़े कार्य को संभालता है और उन असंख्य जीवों का यथायोग्य प्रबंध करता है और ऊपर तथा नीचे के लोकों में अपने जीवों को जो उसे सौंपे गए हैं किस प्रकार सब तरह के आराम तथा दुख देने का प्रबंध करता है," तो वह हंसकर बोला, "अरे! मुझे भी नहीं करना होता, क्योंकि जो कोई व्यक्ति मेरी किसी भी दुनिया में आता है अपने साथ अपने दुखों और आनंद का भारी बोझ लांदकर लाता है और इस प्रकार नीचे पृथ्वी पर और उसके बाद, बाद के लिए अपने कर्मों से अपना स्वर्ग व नरक स्वयं बनाता है। जिस किसी को जो कुछ मेरे राज्य में चाहिए होता है, वह उसका प्रबंध अपने आप करता है। मनुष्य के इस दुखदायक नाटक–वेग, जो चाहे संयोग–वियोग दोनों को मिलाकर बनता है, मैं उससे बिल्कुल अछूता रहकर केवल देखता रहता हूँ और उसके अंतर के घेरों को लपेटता चला जाता हूँ। इस प्रकार आत्मा की स्वतः चलत क्रिया अपने आप अपने द्वारा प्रभु की इच्छा के अनुसार कार्य करती है।

ब्रह्म की शक्ति अपार है तथा मनुष्य के मन द्वारा इसका ज्ञान पाना कठिन है, और उससे भी परे का केवल संतों का ज्ञान है और वह भी पूर्ण रूप से बोल सकते हैं। यह तथाकथित और बनावटी संतों से नहीं जाना जा सकता, बल्कि संत

सत्गुरु की श्रेणी का कोई ऊँचा महात्मा ही इस सत्यता के रहस्य को बतलाने का अधिकार रखता है– उस सत्य का जो आदि में था, अब है और बाद में रहेगा। मानव जाति को उपदेश देने और जिज्ञासु जीवों को परे से परे रहस्यों में दीक्षित किया जाता है, जो उस ज्ञान को पाने के लिए बन चुके हैं, यह सभी कारणों के उस अकारण कारण को समझने के लिए आवश्यक है, जो कि नीचे के समस्त जीवन को सारे जगत में चलाता है। जो लोग इस शरीर में रहते हुए आत्मा को जीवन मुक्त व स्वतंत्र जीवन देने को तैयार हैं। गुरु नानक का कहना है कि,

> ਜੀਵਨ ਮੁਕਤਿ ਸੋ ਆਖੀਐ ਮਰਿ ਜੀਵੈ ਮਰੀਆ ॥
> ਜਨ ਨਾਨਕ ਸਤਿਗੁਰੁ ਮੇਲਿ ਹਰਿ ਜਗੁ ਦੁਤਰੁ ਤਰੀਆ ॥
>
> – आदि ग्रंथ (आसा म.4, पृ.441)

यह ज्ञान हमको परा–विद्या और परे के ज्ञान से प्राप्त होता है।

इसके अलावा ब्रह्म विद्या के और भी अनेक श्रेणी के शिक्षक हैं, जो अपरा–विद्या के स्वभाव के हैं और परा–विद्या की ओर अग्रसर करते हैं। यह सब अपनी सामर्थ्य द्वारा ब्रह्म की शक्ति तक का ज्ञान देते हैं। पैग़ंबर और मसीहा भविष्य में होने वाली बड़ी–बड़ी घटनाओं की पूर्व सूचना देते हैं, लोगों को अच्छा जीवन बिताने की शिक्षा देते हैं और उन तक ब्रह्म अर्थात परमात्मा का संदेश व ख़बरे पहुँचाते हैं, अवतार ब्रह्म की विभिन्न शक्तियों के चोले में जन्म लेते हैं। उनका कार्य संसार को एक नियम व क्रम से समाज के उचित व अनुचित संतुलित क्रम में बांधे हुए चलाए रखना है। योगी और योगीश्वर योग माया (मन की सत्ता) के घेरे में रहते हैं और अपने दीक्षित शिष्यों को अपनी पूरी शक्ति तक उच्चतम स्तर तक पहुँचाते हैं।

ब्रह्मलोक जिसको बहुतों ने पुरी, भवन, तबक, खंड करके कहा है प्रत्येक के साथ ब्रह्म की एक न एक शक्ति को संबंधित किया है– जैसे ब्रह्मा–पुरी, विष्णु–पुरी, शिव–पुरी, इंद्र–पुरी आदि जिसके साथ इन शक्तियों की, जिनको संचित करके ब्रह्म कहते हैं– जीव पूजा करते हैं और समय के साथ प्रत्येक जीव अपने मनचाहे स्थान को, जिसके साथ उसका संबंध है, प्राप्त करता है।

प्राचीन समय के यूनान के लोग आत्मा के तीन पहलुओं को "सूत कातने वाले चरखे की तीन बहनें" कहकर पुकारते हैं– जिसमें से एक हर समय धागा कातने में लगी है; दूसरी उस धागे को सजाने और विकसित करने में लग जाती

है; तीसरी जीवन के उस धागे को निश्चित समय बीत जाने पर काटने अर्थात समाप्त करने में लग जाती है। इसी प्रकार ईसाइयों के धार्मिक सिद्धांत में पहले प्रकृति की रचना करने वाला सिद्धांत 'नाम' है, फिर दूसरा और तीसरा नाम का सिद्धांत है, जो अपने–अपने कार्यों को पूरा करते हैं। यही प्रसिद्ध त्रिगुणात्मक सिद्धांत है— उसमें पिता, पूत और पवित्र आत्मा तीनों का समन्वय है।

जहाँ संसार के सारे दर्शनशास्त्र का अंत होता है, वहाँ पर वास्तविक धर्म का आरंभ होता है। यह केवल आत्मा के पीछे है, जो शरीर में निवास करती है, अपने किए व्यक्तित्व को प्रकट करती है, जैसा कि यह बना है। इसके अंदर शरीर, मन तथा बुद्धि के तीन आवरण या सवारियाँ हैं। प्रकाशवान सादगी अविभाजित पूर्णता में इसका अस्तित्व महान अविनाशी पेड़ अपने निज तत्त्व में सदैव हरा और सजीव रहता है। बेशक़ इसके चारों ओर सदा बदलने वाला विभिन्न प्रकार का जीवन है। यह अनेकों रंगों वाले शीशे के जादू के कमरे से टूट सकता है और ब्रह्म के त्रिगुणात्मक अंडे को बदलकर परे के मंडलों में जा सकता है। एक नए जन्मे पक्षी की भाँति जो पिछले जन्म में चिता पर जलने के बाद राख में से फिर उठ गई। व्यक्ति की भी अधिक यौवन और बल सहित पुनः जन्म लेना होगा जिससे आत्मा के जीवन में से जो ऊपर खड़ा है गुज़र सके।

मानसिक जगत को पार करना इतना सरल नहीं, जैसा कि परे के रहस्यों में अज्ञानी व्यक्तियों को मालूम पड़ता है। यह बड़े धोखे देने वाला जगत है, जहाँ सारी शिक्षा प्राप्त किए और तप किए ऋषि तथा महात्मा लोग भी अपनी भूमि को पकड़ने में असफल हो जाते हैं। उस महान सृष्टि में क्या है, जो कि ब्रह्मा उन परिश्रमी जीवों को देना चाहता, जो उनके क्षेत्र से भागना चाहते हैं और अपने पिता को सच्चे घर में पहुँचाते हैं। प्रत्येक पग पर चाहे वह भौतिक, सूक्ष्म या मानसिक जगत है, वह आकांक्षी या चाहने वाले जीवों को रोकने का प्रयत्न करता है। बड़े–बड़े पैग़ंबर और मसीहा सब दूसरों ने शैतान, मारा, अहीरमाँ और बुरी आत्माओं जैसे असुर राक्षस और उनके मध्यस्थों के साथ हुई भयंकर मुठभेड़ों के ग़लत व सही अनुभव अनेकों प्रकार से बयान किए हैं। उन्होंने सत्य के जिज्ञासुओं को सांसारिक राज्यों और पदार्थों का लालच देकर उनको राह से रोकने का प्रयत्न किया। यदि वह इन आकर्षणों से नहीं गिरते, तो अग्नि, बिजली, भूचाल, आकाश के फटने, बादलों की गरज, बादलों से उत्पन्न बिजली

आदि से डराने की कोशिश की जाती है। इस प्रकार की दुर्भाग्यशाली घटनाओं की पूर्व सूचना से ही व्यक्ति किस परीक्षा और कसौटी पर उतर सकता है। जब व्यक्ति के पास उसका गुरु या मुर्शिद होता है, क्योंकि तभी गुरु की शक्ति अपने शिष्य को ऊपर खींचकर अपने में लीन कर लेती है और तब उसे 'मधुर संगीत और ज्योति' की राह पर ले जाती है। प्रत्येक जीव के लिए ब्रह्म भरसक प्रयत्न करता है और तब तक उसको नहीं जाने देता, जब तक कि उसे पूरा आश्वासन नहीं मिल जाता कि जिज्ञासु पर उसके गुरु की शक्ति की छत्रछाया है। क्या हम भौतिक जगत में नहीं देखते कि एक राज्य के शासक और सरवारे अपनी हदों को बंद कर देते हैं, ताकि उनकी सरकारें ग़ैर–कानूनी ढंग से उससे बाहर न जा सकें और ऐसे आने–जाने के लिए क़ानून बनाते हैं?

> अफरिए जमु मारिआ न जाई ।।
> गुर के सबदे नेड़ि न आई ।।
> सबदु सुणे ता दूरहू भागै हरि जीउ बेपरवाहा हे ।।
>
> – आदि ग्रंथ (मारू म.5, पृ.1054)

हमें गुरु नानक का धरम–खंड का कुछ और पन्नों पर वर्णन मिलता है। इसके पश्चात् वह बड़ा शिक्षक, तीर्थयात्री, जीव की यात्रा का वर्णन किया है कि वह सचखंड के विभिन्न क्षेत्रों में से किस प्रकार निकली। बाक़ी दो क्षेत्रों को वह 'ज्ञान–खंड' और 'सरम–खंड' कहते हैं। पहले वाले में जीव का घेरा असीमित रूप से विकसित होता है, क्योंकि यह प्रकृति की समस्त रचना का अनेक अनंत रूपों और स्वभाव का एकदम ज्ञान देता है और जीव प्रकृति की क्रिया के अपरिवर्तनशील नियमों को जान जाता है। दूसरे में, नाम की शक्ति से जीव आकर्षित होकर प्रकृति के पदार्थों के अंतर की झलक और रस लेता है।

उससे आगे 'करम–खंड' और दया का क्षेत्र आता है। दिव्य नाम के द्वारा पवित्रता आने पर जीव एक बार सदा के लिए ख़राब से ख़राब, अनिश्चित और अस्थिर वासनाओं की मैल से मुक्त हो जाता है। अब कोई भौतिक पदार्थ उसकी दृष्टि को अंधकार भय नहीं बनाती। 'पवित्र नाम और जीवन की ज्योति' जो सारे ब्रह्मांड और उसमें स्थिति सभी संसारों को जन्म देती है। उसके साथ संपर्क बनने से जीव को परमात्मा का पूरा अनुभव प्राप्त होता है।

सचखंडि वसै निरंकारु ।। करि करि वैखै निहाल ।।
तिथै खण्ड मंडल वरभंड ।। जो को कथै त न अंत न अंत ।।
तिथै लोअ लोअ आकार ।। जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार ।।
वेखै विगसै करि विचार ।। नानक कथना करड़ा सार ।।

– आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी.37, पृ.8)

अंत में सचखंड में पहुँचकर, जो सत्य का घर है, जीव परमात्मा की इच्छा के अनुसार अपने को उसमें लीन और एक रूप पाता है। "सभी हृदय प्रभु से भरपूर होने के कारण मृत्यु और भ्रम के घेरे से परे रहते हैं। सभी परमात्मा की इच्छानुसार कार्य करते हैं। इसकी शान का बयान भी करना कठिन है। जैसा कि पहले कहा गया है कि जीव का ऊपर उठकर महाचेतन अवस्था का ज्ञान प्राप्त करना ही अनंत का जीवन है, जिसमें से कोई फिर लौटकर वापिस नहीं आता।

जिस अवस्था का गुरु नानक ने ऊपर बयान किया है, वह विज्ञान के क्षेत्र के अंतर्गत आता है, जहाँ व्यक्ति को स्वयं प्रत्यक्ष और शीघ्र अनुभव प्राप्त होता है। यह ज्ञान सैद्धांतिक ज्ञान के विपरीत है, जो कि गुरु अपने शिष्य को धर्मग्रंथों की सही रूप में विवेचना करके देता है। पूर्ण गुरु में सब धर्मों का समन्वय और कुछ उससे अधिक होता है। मानव जाति को परमात्मा के राह की शिक्षा देने के लिए समय–समय पर जो ऋषि–मुनि और संत इस संसार में आए, धर्मग्रंथों में उनके प्राप्त अनुभवों का निचोड़ दिया हुआ है। हम बिना किसी संदेह के इन्हें तभी पढ़ सकते हैं, यदि हमें उन प्राचीन भाषाओं का सही ज्ञान हो, जिनमें वह ग्रंथ लिखे गए हैं। लेकिन फिर भी हमें न तो उनका सही ज्ञान हो सकता है, न ही हम उन प्रत्यक्ष विभिन्नताओं को समझकर सही रूप में समन्वित कर सकते हैं, न हम विभिन्न धर्मों के ग्रंथों की विरोधी बातों को समझने योग्य बन सकते हैं। जिस व्यक्ति को इन धर्मग्रंथों में जो बाते जीवन और आत्मा के बारे में इन धर्मग्रंथों में लिखी मिलती हैं, जो सबमें समान रूप से है, अंतर में उसके साथ संपर्क स्थापित है, वह हमें इस ज्ञान को सरल रूप में देता है, जिसको ग्रहण करने की हममें सामर्थ्य है।

कहा जाता है कि संत के साथ रहने में परमात्मा मनुष्य के निकट हो जाता है, क्योंकि प्रभु भी उस संत के अंदर से बोलता है। जैसे कि हम सभी एक न एक रूप से धर्मग्रंथों के साथ बंधे होते हैं। तो गुरु इन विभिन्न धर्मग्रंथों से पूरा लाभ उठाता है, जिसके द्वारा वह आसानी से विभिन्न प्रकार के लोगों को अध्यात्म

विद्या के सही रास्ते पर बिना किसी संदेह के लाता है। मुर्शिदे–क़ामिल केवल किताबी ज्ञान देकर ही संतुष्ट नहीं होता। वह जो कुछ कहता है, उसका प्रत्यक्ष अनुभव भी देता है और उसी में उसका बड़प्पन है और महत्त्व है। यदि कोई जो कुछ बुद्धि के स्तर से समझता है, वहाँ तक जीव की आत्मा को अनुभव नहीं दे सकता, वह सही अर्थों में पूर्ण गुरु नहीं और उसके कहने का न कोई विशेष महत्त्व होता है और न ही उस पर विश्वास होता है।

मनुष्य के चोले में परमात्मा सत्य स्वरूप बनकर सत्गुरु में बैठा होता है। उसका कार्य है कि मानव जीवों को प्रभु के असली घर अर्थात सत् या सचखंड में पहुँचाए, जहाँ सत्य का निवास है। यही पहला महान खंड है, जो परमात्मा की इच्छा से बना इसलिए इस खंड में आत्मा निरोल, अनंत और अविनाशी रूप में होती है।

संतों का मार्ग एक महान सड़क है, जो भौतिक जगत से निरोल आत्मिक जगत की ओर ले जाती है जहाँ किसी प्रकार का द्वैत, विरोधी तत्त्व नहीं है। सत्गुरु कहते हैं :

> *ज्योति तत्व के विशाल समुद्र में, अपने हृदय में और पूर्ण युक्ति से चल। चलता रह, जब तक कि मनुष्यत्व पूरी तरह समाप्त नहीं हो जाता। ज्योति तत्व असीम और अनन्त है।*

उसका मार्ग स्वर्ग और नरक व परिश्रम और दुख का नहीं बल्कि फूलों का बग़ीचा है जहाँ 'स्वर्ग' की ज्योति फैली हुई है और जहाँ आत्मा 'दैवी–शब्द' में हर समय लीन रहती है और इससे भी ऊपर जहाँ एक सच्चे मित्र और शिक्षक के समान जो कभी साथ नहीं छोड़ता, प्रत्येक ग़लती को ठीक करता है।

परमात्मा अपने पूर्ण दिव्य स्वरूप में प्रकट होता है और उस जीव रूपी यात्रा को अपने साथ परे के मंडलों में निरोल आत्मा के जीवन में ले जाता है। जैसे–जैसे वह आगे बढ़ता है, उसको उस राह के रहस्यों और सौंदर्यों का परिचय देता जाता है। उसे मार्ग की रुकावटों तथा गिरावटों से बचाता है और मार्ग में आने वाली तेज़ और बनावटी चीज़ों से बचने का आदेश देता है।

प्रारंभ से ही शिष्य को यह शिक्षा दी जाती है कि शरीर की स्थूल चेतनता से आत्मा को किस प्रकार निकालकर ऊपरी मंडलों में ले जाना है। अंतर बैठे

व्यक्ति ने अपने को उस शारीरिक और कठोर आवरण में उसी प्रकार निकालना है, जैसे मक्खन में से बाल को कोमलता से निकाला जाता है, क्योंकि आत्मा ही इस 'शैतान शरीर' में से निकलकर ऊपर महाचेतन प्रभु को प्राप्त करने के लिए उठती हैं। जैसा कि प्लेटो के बाद आने वाले लोगों ने अपने ढंग से कहा हैं। मुंडकोपनिषद् (III:1.8) में कहा गया है कि,

> न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैसतपसा कर्मणा वा । ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ।।

अर्थात, न वह आँखों से देखा जाता है न जुबाँ से न इंद्रियों से, न सदाचार से, न ही पूजा-पाठ, तप-दान से, जितना जल्दी कि वह पवित्र बुद्धि (सुरत) से ध्यान (अंतर) में देखा जाता है।

ऐसा ही पाश्चात्य तत्त्व-वेत्ताओं ने कहा है :

> *सच्चा आनंद इंद्रियों के द्वारा नहीं मिलता क्योंकि वह इंद्रियों की सीमा से परे है। यदि हमें यह ज्ञान हो जाए कि इंद्रियों से ऊपर उठकर उस पवित्र ज्योति के दर्शन कैसे हो सकते है, जैसे दर्शन पवित्र आत्माओं को प्राप्त होते हैं, तो हमें बहुत आनंद प्राप्त हो सकेगा।*

संक्षिप्त में विवेक ही सचमुच आत्मा की विज्ञान और कला है और एक ऐसा महात्मा जो दोनों ही प्रकार से कुशल है, हमारी जीवन तथा मृत्यु की पहेली को प्रारंभ में ही प्रत्यक्ष 'जीवन मृतक' का अनुभव देकर सुलझा सकता है, जहाँ पर संदेह का तनिक भी स्थान बाक़ी नहीं रह जाता।

> *जीवन एक पवित्र ज्योति है और हम एक अदृश्य सूर्य के द्वारा रहते हैं जो हमारे अंतर में है।*
>
> *जीवन और मृत्यु ने ज्योति से क्या करना है? अपनी ज्योति के स्वरूप का मैंने तुमको बनाया है।*
>
> *जीवन और मृत्यु से संबंधित बातें एक भौतिक स्वप्न हैं। तुम अपनी स्वप्नरहित अवस्था को देखो।*
>
> *सृष्टि में ज्योति और भ्रम- दोनों हैं अन्यथा कोई चित्र भी संभव न होता ।*

अंधेरा प्रकाशवान हो जाता है और बंजर फल से भर जाता है– केवल उस समय जब तुम यह समझोगे कि तुम कुछ भी नहीं हो। इस शरीर से ऊपर आने वाले उस पर्वत पर ही तुम्हें स्वर्ग और धरती– दोनों का मिलन होने का अनुभव और साक्षात्कार होगा।

– सर थॉमस ब्राउने

जीवन की उच्चतम शिक्षा पूर्णता की पूजा करना है। और केवल पूर्ण व्यक्ति ही अपने जीवन का आधार बाँटकर तुम्हारी आत्मा को मन और भौतिक तत्त्वों से ऊपर उठाकर उस दिव्य ज्योति की झलक दे सकता है।

वह तुम्हें पहले दिन बिठाकर उसी समय स्याही के पर्दे को दूर करके तुम्हारी अंतर की आँख को थोड़ा खोलता है, तब तुम्हें ऊपर दिव्य ज्योति के दर्शन करवाकर तुम्हारे कानों को आकाशवाणी (अनहद) के संगीत को हमेशा सुनवाता है। ऐसी सामर्थ्य वाला महापुरुष ही पूर्ण संत और सच्चा गुरु कहलाने का अधिकार रखता है। ऐसे ही गुरु के लिए शंकराचार्य ने कहा है कि,

तीनों लोकों में ऐसा कोई नहीं, जिसकी सच्चे सत्गुरु से तुलना की जा सके। यदि दार्शनिक की कसौटी को ऐसे ही सच मान लें, यह केवल लोहे को सोने में बदल सकती है, लेकिन किसी दूसरे दार्शनिक की कसौटी में नहीं बदल सकती।

– पद्मपाद विरचित पंचपादिका

निपुण शिक्षक इसके विपरीत हर शिष्य को जो भी उसकी शरण में आता है, अपने जैसा बना लेता है। इसलिए गुरु ज्ञान तथा परिवर्तन से परे है।

गुरु अर्जनदेव ने अपने गुरु रामदास के बारे में कहते हुए बताया था कि,

गुर नालि तुलि न लगई खोजि डिठा ब्रह्मंड ।।

– आदि ग्रंथ (सिरीराग म.5, पृ.50)

और अंत में कहा,

हरि जिऊ नामु परियो रामदासु ।।

– आदि ग्रंथ (सोरठ म.5, पृ.312)

प्रतिदिन के जीवन में हम सब बड़े व्यस्त हैं, सचमुच इतने व्यस्त हैं कि हमें परमात्मा के लिए सोचने का भी समय नहीं। ज़िंदा परमात्मा की उपस्थिति और अभ्यास करने और उसके पवित्र चरणों में बैठने की तो बात बहुत दूर है, यदि कभी हम पल भर उसके लिए कुछ बोलते हैं या पूजा और उसकी भक्ति करते हैं, तो हम उसको प्राप्त करने के लिए या उसमें लीन होने के लिए ऐसा नहीं करते, बल्कि इसलिए कि हमें उससे कुछ माँगना है, या कुछ अपनी मुसीबतों का जल्दी छुटकारा माँगना है या संघर्षों और कष्टों से दूर जाना है।

यदि कभी परमात्मा के लिए बड़ी गंभीरता से सोचते हैं, तो इस जगत में जिस वातावरण से हम घिरे हुए हैं, उसी में हम उसको पाने का प्रयत्न करते हैं। जैसे कि बर्फ़ से ढकी गुफ़ाओं में, जलती रेत के रेगिस्तानों में, नदी–नालों की गहराइयों आदि में। प्रकृति के तत्त्वों की शक्तियों में जैसे सूर्य, चलती वायु, गरजते बादलों, सुबह और शाम के सितारों और इससे भी ज़्यादा पेड़ों के छिद्रों में, समुद्र की मछली में, हवा के कीड़ों आदि में ढूँढते हैं। और इसमें आश्चर्य नहीं कि इतने प्रयत्न करने पर भी हम उसको पा नहीं सकते।

स्वयं परमात्मा ने कहा है, "मैं इतना विशाल हूँ कि समस्त संसार मुझे नहीं देख सकते, न ही आकाश मुझे संभाल सकते हैं, न पृथ्वी मुझे बैठने को स्थान दे सकती है। लेकिन तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा कि एक पवित्र और सदाचारी व्यक्ति में निवास करता हूँ। यदि तुम मुझको मिलना चाहते हो तो मुझको वहीं तलाश करो तुम अवश्य मुझे पा सकोगे। संत कबीर ने भी यही कहा है :

वस्तु कहीं ढूंढे कहीं किहि विधि आवै हाथ,
कहै कबीर तब पाइये भेदी लीजे साथ ।
भेदी लिया साथ करि दीनी वस्तु लखाय ।
कोट जनम का पंथ था पल में पहुँचा जाय ।।

– कबीर समग्र भाग–1 (गुरु शिष्य हेरा को अंग 22, 23 , पृ.392)

आत्मा को प्रकाशित करने का यही रास्ता है। यह जो क्रिया देखने में अत्यंत कठिन है और लंबी लगती है, किसी पूर्ण गुरु की कृपा से अत्यंत सरल हो जाती है। वह (गुरु) मुझे जादू की छड़ी देते हैं, जिसमें कुछ कला होती है, जिससे व्यक्ति उस स्थान पर पहुँचने के योग्य हो जाता है, जहाँ किसी का पहुँचना अत्यंत कठिन है।

सतलोक के उपरि धावै ।। अलख अगम की तब गत पावै ।।
तिस ते उपरि संतन धाम ।। नानक दास कीओ बिसराम ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि किसी को जीते जी मरने का भेद आ जाए, तो उसे जन्म–मरण के चक्र से छुटकारा मिलकर सदैव का जीवन प्राप्त हो जाता है। संत इसी प्रकार की मृत्यु की प्रशंसा में बहुत कुछ कहते हैं। ऐसी मौत का हमें अनुभव देते हैं। हमें यह सिखलाते हैं कि विभिन्न दिव्य मंडलों से किस प्रकार गुज़रकर परे के मंडलों में जा सकते हैं और उस परमात्मा को कैसे पा सकते हैं, जो हमारा जन्म अधिकार है लेकिन इस समय हम उसे भूले हुए हैं। यदि हम उन संतों के कहने में चलें, उनकी शिक्षा को धारण करें, उसका पूरी तरह पालन करके अभ्यास करें, तो हम भी उस स्थान पर जा सकते हैं, जहाँ मृत्यु के पश्चात् हमसे हर एक को बड़ी ही निर्बल और कष्टों से भरी अवस्था में जाना पड़ता है। जीवन और मृत्यु की सीमा रेखा यहाँ के संसार में है। उस संसार में पहुँचकर मृत्यु तथा जीवन को पार कर जाता है। इसका वर्णन सभी धर्मग्रंथों में दिया है।

मुइआ जिनु घरि जाइए, तिनु जीवदिआ मरु मारि।।

– आदि ग्रंथ (सिरीराग म.1, पृ.21)

नानक जीवतिआ मरि रहिए ऐसा जोगु कमाइआ।।
वो बाझहु सिङ्गी बाजै तऊ निरभउ पद पाइए ।।

– आदि ग्रंथ (सूही म.1, पृ.730)

मरिये तो मरि जाइए, छूटि परै जंजार ।
ऐसा मरना कौ मरै, दिन में सौ सौ बार ।।

– कबीर समग्र भाग–1 (सूक्ष्म जनम को अंग–4, पृ.429)

जब लग आस सरीर की, मृतक हुआ न जाए ।
काया माया मन तजै, तब चौड़े रहै बजाए ।।

– कबीर समग्र भाग–1 (जीवत मृतक को अंग–11, पृ.484)

जीवत मिरतक होइ रहै, तजै खलक की आस।
रच्छक समरथ सतगुरु, मत दुख पावै दास ।।

– कबीर साहब का साखी संग्रह (जीवत मृतक का अंग–1, पृ.16)

तूं मरे मरन तों पहिला, इह मरना फल पावेगा ।

– बुल्लेशाह

गुरुवाणी में शब्द की महिमा आई है :

हम शबदि मुए शबदि मारि जीवाले भाई शब्दे ही मुकति पाई।।
शबदे मने तनू निरमलु होआ हकर वसिया मनि आई ।।
शब्दु गुर दाता जितु मनु राता हरि सिऊ रहियासमाई ।।

– आदि ग्रंथ (सोरठ म.3, पृ.601)

सबदि मरहु फिरि जीवहु सद ही ता फिरि मरणु न होई ।।
अम्रितु नामु सदा मन मीठा शबदे पावे कोई।

– आदि ग्रंथ (सोरठ म.3, पृ.601)

संत हमको क्या देते हैं? वह उस अविनाशी शब्द–धारा का साक्षात्कार करता है, जो सारी सृष्टि का जीवन आधार है, जिसमें हम सब रहते हैं। इस सुनने योग्य जीवनधारा पर सवार होकर जीवनकाल में ही हम सृष्टि के विभिन्न मंडलों से गुज़र सकते हैं और फिर अपनी इच्छानुसार इस भौतिक जगत में वापिस आ सकते हैं।

बिन शब्द उपाव न दूजा । काया का छुटे न कूज़ा ।।

– सार बचन (शब्द 20, बचन 10)

चाहे संसार की आँखों में कितना ही कोई अच्छा और ज्ञान देने वाला क्यों न हो, पर मोक्ष व अमर जीवन को कर्मों से नहीं पा सकता। यह तो किसी पूर्ण पुरुष की अपार कृपा का उपहार है, जिसमें परमात्मा की शक्ति पूर्ण रूप से कार्य करती है।

उसकी कृपा से तुम बच गए हो......अपने कर्मों से नहीं। यह परमात्मा का उपहार है, तुम्हारे कर्मों का नहीं। कभी ऐसा सोचकर तुम्हारे में से किसी को अभिमान न हो जाए।

– पवित्र बाइबिल (इफ़सियों 2:8-9)

हमने जो अच्छे कर्म किए हैं, उससे नहीं, बल्कि उस परमात्मा ने अपनी दया–मेहर से हमारे जन्म–मरण का

लेखा समाप्त करके हमारे अंतर में दिव्य आत्मा को जाग्रत करके हमें बचा लिया है।

— पवित्र बाइबिल (तीतुस 3:5)

इस नाम के सिवाय व्यक्तियों को जो स्वर्ग दिया गया है, उसमें मोक्ष और किसी नाम से संभव नहीं जिससे हम बच सकें।

— पवित्र बाइबिल (कार्य 4:12)

और उस प्रभु की कृपा से सब व्यक्तियों को मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

— पवित्र बाइबिल (तीतुस 2:11)

और उसकी दया यहाँ से जाने के बाद भी मिलती रहती है। परमात्मा और उसकी सृष्टि व्यक्तियों को मिली हुई है। परमात्मा के हुक़्म से हम दिव्य शब्द के साथ सदा लगे रहते हैं, उस जीवन सिद्धांत में लीन रहते हैं। और इस अविनाशी जीवन का मार्ग प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा रास्ता नहीं– चाहे कोई कितनी भी कोशिश क्यों न कर ले। लेकिन इस जीवनकाल में जीवन की रेखाओं पर रहते हुए, जो परमात्मा का साक्षात्कार 'दिव्य ज्योति' और उसके शब्द के द्वारा होता है, वह किसी ऐसे सत्पुरुष की दया पर निर्भर है, जो संत 'शब्द–सदेह' है, जिसको प्रभु ने स्वयं सब कुछ सौंप दिया है और,

प्रभु के अलावा और कोई उसके बेटे को नहीं जानता और न ही बेटे के अलावा पिता को कोई जानता है या वह जानता है जिसको उसका बेटा जानने योग्य बनाए।

— पवित्र बाइबिल (मत्ती 11:27)

समय–समय पर महान आत्माएँ इस संसार में हमें अपने असली घर की याद दिलाने आती हैं, वह ज़ोरदार आवाज़ में हमें बतलाती हैं कि यह संसार हमारे हमेशा रहने का स्थान नहीं। यहाँ हम सराय में एक यात्री के समान जीवन के थोड़े से समय के लिए आए हैं और इसलिए इसे छोड़ने की हमको तैयारी करनी चाहिए। इस काम को हम जितना जल्दी कर लेंगे उतना ही हमारे लिए लाभदायक होगा। हमें चाहिए कि हम परमात्मा के सत्य के लिए काम करें और उसी को प्राप्त करें।

परमात्मा की कृपा से तुम्हारा वैसा राज्य इस धरती पर आ जाए, जैसा कि स्वर्ग में है।

– पवित्र बाइबिल (कुरिंथियों 6:19)

इस राज्य के विषय में कहा जाता है कि,

परमात्मा का क्षेत्र केवल देखने से नहीं आता। वह अंतर में है सौभाग्य से यह शरीर उस दिव्य आत्मा का मंदिर है और वह आत्मा उसमें निवास करती है।

– पवित्र बाइबिल (लूका 17:20)

यही कारण है कि सभी ऋषि–मुनियों ने इसकी महिमा गाई है।

जो घरु छडि गवावणा सो लगा मन माहि ।।
जिथै जाइ तुधु वरतणा तिस की चिन्ता नाहि ।।

– आदि ग्रंथ (सिरी म.5, पृ.43)

अर्श अस्त नशेमने तू शामित बादा,
काई व मुक़ीमे-खते खाशाक शवी

– शम्स तबरेज़

अर्थात ए रूह! तेरे रहने की जगह अर्श पर है, तू वहाँ की रहने वाली यहाँ पर मिट्टी के अंदर क़ैद पड़ी है।

जू निज घरि वसियडा हऊ रूलि भसमै ढेरी ।।

– आदि ग्रंथ (तुखारी म.1, पृ.111)

तेरा नाम अधर है प्यारी तू घर संग बंधानी ।

– स्वामी जी महाराज शिवदयाल सिंह, सार–बचन (20:19)

पानी केता बुलबुला यह मानस की जाति,
शब्द पार जो कोई रहे ते कुछ आवे हाथ ।

– संत कबीर

जिन्नी नाम धियाया गए मसक्कत घाल,
नानक ते मुख उजले केति छुट्टि नालि ।

– आदि ग्रंथ (जप जी अन्तिम, पृ.8)

m